डा० सद्धातिस्स
बुद्ध
जीवन और दर्शन

सङ्घातिस्स
बुद्ध: जीवन और दर्शन।

कृपया यह ग्रन्थ नीचे निर्देशित तिथि के पूर्व अथवा उक्त तिथि तक वापस कर दें। विलम्ब से लौटाने पर प्रतिदिन दस पैसे विलम्ब शुल्क देना होगा।

मुमुक्षु भवन वेद वेदाङ्ग पुस्तकालय, वाराणसी।

प्रकाशक

यशपाल जैन

मंत्री, सस्ता साहित्य मंडल
एन ७७, कनॉट सर्कस, नई दिल्ली

•

पहली बार : १९८१

मूल्य : रुपये ६.००

•

मुद्रक

कंवल किशोर, लखेरवाल प्रेस, नई दिल्ली-५

प्रकाशकीय

'सस्ता साहित्य मंडल' बराबर इस प्रकार की पुस्तकें प्रकाशित करता आ रहा है, जो जन-सामान्य को अपने चरित्र को ऊपर उठाने के लिए प्रेरित करें। उसके प्रकाशनों में अधिकांश पुस्तकें ऐसी ही मिलेंगी।

प्रस्तुत पुस्तक से 'मंडल' एक नई पुस्तक-माला का श्रीगणेश कर रहा है। इस माला की पुस्तकों में बौद्ध, जैन, ईसाई, इस्लाम और सिख आदि धर्मों के प्रवर्त्तकों अथवा उन्नायकों के जीवन और शिक्षाओं पर प्रकाश डाला जायगा।

हमें हर्ष है कि इस माला की पहली पुस्तक 'बुद्ध : जीवन और दर्शन' पाठकों के हाथों में पहुंच रही है। इसके लेखक महासंघनायक डॉ० सद्धातिस्स (एम ए०, पी०एच०-डी०, डी-लिट, त्रिपिटकाचार्य) का जन्म श्रीलंका में हुआ था। सन् १९२६ में उन्होंने बौद्ध भिक्षु की दीक्षा ली और अब वह महाथेर के पद पर आसीन हैं। पाली, संस्कृत, सिंहली और हिन्दी भाषाओं का उन्हें विशेष ज्ञान है। उन्होंने बनारस, लन्दन और एडिनबरा के विश्वविद्यालयों में शिक्षा प्राप्त की और बनारस तथा टोरेंटो में बौद्ध धर्म पाली के प्राध्यापक रहे।

डॉ० सद्धातिस्स सन् १९५७ से लन्दन के 'बौद्ध विहार' के संचालक हैं और 'ब्रिटिश महाबोधि सोसायटी' तथा ग्रेट ब्रिटेन की 'संघ कौंसिल' के अध्यक्ष हैं। विश्व-साहित्य और सार्वभौम विचार-धारा के क्षेत्र में जन-सामान्य की सेवा करने के उपलक्ष्य में उन्हें सन् १९७६ के अन्त में श्रीलंका के केलानिया (पहले के विद्यालंकार) विश्वविद्यालय द्वारा डी-लिट् की उपाधि प्रदान की गई।

बौद्ध धर्म को स्पष्ट रूप से समझने के लिए उनकी अनेक पुस्तकों में 'दी बुद्धाज वे' (बुद्ध का मार्ग) और 'बुद्धिस्ट इथिक्स' (बुद्ध का नीति-शास्त्र) पुस्तकें प्रमुख हैं। ये दोनों ही पुस्तकें जार्ज एलन एंड

अनविन द्वारा प्रकाशित हुई हैं और उस क्षेत्र की प्रामाणिक पुस्तकों के रूप में उन्होंने विश्वख्याति अर्जित की है।

प्रस्तुत पुस्तक अंग्रेजी में 'द लाइफ आफ द बुद्धा' के नाम से लन्दन के प्रसिद्ध प्रकाशक जार्ज एलन एण्ड अनविन द्वारा प्रकाशित हुई है।

यह निश्चय ही बड़े हर्ष की बात है कि इस पुस्तक का भावानुवाद हिन्दी के विख्यात लेखक ने किया है। विट्ठलदास मोदी कई पुस्तकों के रचयिता हैं। उनकी पुस्तकें साहित्य-जगत में बहुत ही लोकप्रिय हुई हैं। सामग्री के साथ-साथ भाषा-शैली की दृष्टि से भी प्रस्तुत पुस्तक अपना महत्वपूर्ण स्थान रखती है। पुस्तक में अनेक चित्र भी दिये गए हैं।

पुस्तक के हिन्दी में प्रकाशन की अनुमति देने के लिए हम लेखक तथा प्रकाशक दोनों के आभारी हैं। इस लोकोपयोगी पुस्तक का लाभ सभी वर्गों के पाठक ले सकें, इसलिए इसका मूल्य कम रक्खा गया है।

इस माला की अन्य पुस्तकें पाठकों को शीघ्र ही प्राप्त हों, इसका हम प्रयत्न कर रहे हैं।

—मंत्री

भूमिका

विगत सौ या उससे कुछ अधिक वर्षों में विद्वानों ने पश्चिम के लोगों के मन पर यह बात जमा दी है कि गौतम बुद्ध एक ऐतिहासिक पुरुष थे और उन्होंने एक विशेष प्रकार की शिक्षा दी थी। पिछले पचास सालों में बहुत-सी पुस्तकें निकली हैं, जिन्होंने काफी प्रामाणिक ढंग से उस शिक्षा पर प्रकाश डाला है, फिर भी बहुत थोड़ी पुस्तकें ऐसी लिखी गई हैं, जो एक ओर उस शिक्षा के देने वाले के जीवन पर बिना रोमानी रंग और भावुकता के केन्द्रीभूत रही हों, दूसरी ओर जो नीरस, शास्त्रीय तथा विशिष्ट वर्ग को ही आकर्षित करने वाली न हों।

प्रस्तुत पुस्तक का उद्देश्य बुद्ध के स्वयं के जीवन और उससे सम्बद्ध घटनाओं के संदर्भ में उनकी शिक्षाओं का विवेचन करना है।

बौद्ध दर्शन की गहनता के बारे में भले ही लोगों को बहुत कुछ जानकारी हो, पर उनकी करुणा तथा उनके मानवीय स्वरूप अथवा उस प्रणाली के विषय में कम ध्यान दिया गया है, जिसके द्वारा उन्होंने अपने सिद्धान्तों को सामान्य तथा उन परिस्थितियों में मूर्त्त रूप दिया था, जिनका सामना संघ के एक नेता के रूप में उन्हें प्रायः करना पड़ता था। लेखक आशा करता है कि बुद्ध के जीवन और ईसा पूर्व की छठी शताब्दी के दौरान भारत में ४५ वर्ष के उनके शासन-काल की घटनाओं के इस विवेचन से पाठकों को पता चल जायगा कि वर्त्तमान जीवन के साथ उनकी अटूट प्रासंगिकता है। तब यदि पाठक के मन में आगे बढ़ने और बौद्ध धर्म के गहन अध्ययन के लिए जिज्ञासा उत्पन्न हुई तो सोने में सुहागे की कहावत चरितार्थ होगी।

लेकिन इस छोटी पुस्तक का उद्देश्य तो यह दिखाना है कि लोगों के लिए अपने दैनिक जीवन में अनुकरण करने की दृष्टि से बुद्ध के जीवन का, एक पद्धति के रूप में, विशेष महत्व है।

लेखक ने संस्कृत और पाली दोनों के साहित्य से सहायता ली है। नामों के संबंध में इससे कुछ कठिनाई उत्पन्न-होती है। कुछ बौद्ध शब्दावली संस्कृत शब्दों से अधिक जानी-पहचानी जाती है (जैसे निर्वाण), लेकिन कुछ पाली शब्दों से (जैसे धम्म)। इस पुस्तक में आमतौर पर दोनों का ही प्रयोग किया गया है, लेकिन मुख्य सिद्धान्त यह रक्खा है कि पश्चिमी पाठक उन शब्दों का उच्चारण आसानी से कर सकें।

लेखक ब्रिटिश महाबोधि सोसायटी के प्रधान-सचिव श्री रसेल वैब को हृदय से धन्यवाद देता है, जिन्होंने इस पुस्तक की तैयारी में मूल्यवान सहायता दी। लेखक कु० चित्र श्रीसेन का भी हृदय से आभारी है, जिन्होंने बड़ी सतर्कता से उसकी मूल पाण्डुलिपि को टंकित किया।

—(डॉ०) सद्धातिस्स

निवेदन

पिछले जाड़े की बात है। मैं वैडमिंटन खेल रहा था। पैर रपट गया और ऐसा क्षतिग्रस्त हुआ कि मुझे दो मास के लिए शैय्या की शरण लेनी पड़ी। इसी बीच मेरे मित्र श्री एल्फ अपनी मित्र कैंटवेल के साथ कुशीनगर, लंविनी, सारनाथ, बोधगया, इन बौद्ध तीर्थ-स्थानों के दर्शन करने आये। वे कुछ दिनों 'आरोग्य मंदिर' में भी ठहरे, जिससे कुशीनगर और लुंविनी सुविधापूर्वक जा सकें। एल्फ और कैंटवेल दोनों ने ही बौद्ध धर्म स्वीकार कर लिया है। कैंटवेल के पास पाँच-सात बौद्ध धर्म संबंधी पुस्तकें थीं। ये सभी पुस्तकें उन्होंने मुझे पढ़ने को दीं। इनमें डा० सद्धातिस्स की पुस्तक 'द लाइफ ऑफ द बुद्धा' मुझे विशेष रूप से पसंद आई। मैंने इसका तीन बार पारायण किया, फिर भी तृप्ति नहीं हुई तो इसका अनुवाद आरम्भ किया। नित्य सुबह चार बजे से सात बजे तक तीन घंटे लेटे-लेटे अनुवाद करता। शेष जागृत समय में अनुवाद किये विचारों में रमण करता। डेढ़ महीने में अनुवाद पूरा हो गया और मुझे पता ही नहीं चला कि डेढ़ मास कैसे निकल गये और मैं चलने-फिरने लायक हो गया।

इस पुस्तक की विशेषता यह है कि इसमें भगवान बुद्ध की जीवनी के साथ उनके विचारों के विकास की राह, उनका साधना-पथ और उनके धर्म की रूपरेखा आ गई है।

अनुवाद 'सस्ता साहित्य मंडल' के मंत्री भाई यशपाल जैन ने देखा तो यह उन्हें प्रकाशन-योग्य लगा और वे लदंन गये तो पुस्तक के प्रकाशक से अनुवाद के प्रकाशन की अनुमति ले आये।

आज उन्हीं के प्रयत्न से यह पुस्तक 'बुद्ध : जीवन और दर्शन' प्रकाशित हो रही है। मेरे श्रम को उन्होंने सफल बनाया, इसके लिए मैं उनका कृतज्ञ हूं। साथ ही कृतज्ञ हूं मैं भगवान बुद्ध-द्वारा प्रणीत विपश्यना-

साधना के प्रशिक्षक कल्याणमित्र श्री सत्यनारायणजी गोयनका का, जिन्होंने पुस्तक की पाण्डुलिपि को आद्योपांत पढ़कर पुस्तक में आये नामों को सही रूप दिया और अनुवाद के संवंध में अनेक उपयोगी सुझाव भी।

पुस्तक अपनी सरल शैली और भावों की स्पष्टता के कारण बालक-युवा-वृद्ध सभी के पढ़ने योग्य है। आशा है, सत्साहित्य में रुचि रखने वाली जनता इस पुस्तक को सप्रेम अपनायेगी।

आरोग्य मंदिर,
गोरखपुर

—विट्ठलदास मोदी

अनुक्रम

□□

बुद्ध

जीवन श्रौर दर्शन

□

१ / शैशव

ढाई हजार वर्ष से अधिक हुए, हिमालय की तलहटी में आज जहां भारत और नेपाल की सीमा मिलती है, शाक्य वंश के राजा शुद्धोधन राज्य करते थे। उनकी राजधानी का नाम कपिलवस्तु था। इस राज्य के दक्षिण में कोशल का राज्य था और उसके दक्षिण-पूर्व में मगध का, जो वर्तमान भारत के विहार प्रान्त के राजगृह के चारों ओर फैला था। शाक्यों के राज्य की पूर्व दिशा में कोलियों का राज्य था। शुद्धोधन की पत्नी रानी महामाया इस राज्य के राजा की पुत्री थीं।

ईसा के ५६० वर्ष पूर्व रानी महामाया संतानवती होनेवाली थीं, इसको लेकर राज्य के सभी लोग बहुत प्रसन्न थे। उस समय प्रथा यह थी कि पहला बच्चा पिता के घर न होकर ननिहाल में होता था। अतः प्रसव का समय निकट आने पर रानी महामाया ने अपने पिता के गृह के लिए प्रस्थान किया। राजा शुद्धोधन ने इसकी पूर्व तैयारी बड़े विस्तार से की थी। कोलिय राज तक का सारा रास्ता आरामदेह और सुविधाजनक बनवा दिया था और पानी के लिए रास्ते में जगह-जगह कुएं खुदवा दिये थे। इस रास्ते महारानी अपनी परिचारिकाओं और अनेक अंग-रक्षकों के साथ अपने पीहर की ओर चलीं। रास्ते में लुम्बिनी उद्यान आया। इस उद्यान के पेड़-पौधे और फूल उन्हें बहुत भाये। यहां वे कुछ देर विश्राम के लिए रुकीं। उसका बिस्तर सुगन्धित शालवृक्षों की छाया में लगाया गया। वे जब यहां

विश्राम कर रही थीं तो उन्हें प्रसवपीड़ा आरंभ हुई और उन्होंने एक पुत्ररत्न को जन्म दिया।

अब आगे यात्रा करने का कोई कारण नहीं रहा और वे अपने आदमियों के साथ कपिलवस्तु लौट आयीं। कपिलवस्तु में राजकुमार का भव्य स्वागत हुआ और उनके पिता ने सगर्व उनका नाम सिद्धार्थ[1] रखा।

बुद्ध का जन्म वैशाख की पूर्णिमा को हुआ था, इसी दिन इन्हें बोधि प्राप्त हुई और इसी दिन उन्होंने अपना शरीर छोड़ा।

बुद्ध के जन्म और शैशव के संबंध में अनेक चमत्कार और चमत्कारपूर्ण कथाएं प्रचलित हैं, पर चमत्कारों को तो भगवान् बुद्ध मानते ही नहीं थे। अतः उनका वर्णन व्यर्थ है। हां, आज से ढाई हजार वर्ष पहले जब उनका जन्म हुआ था, उस समय के भारत की ऐतिहासिक स्थिति समझ लेना आवश्यक है। उस समय आर्य आकर उत्तर भारत में पूर्णतया जम चुके थे। वे इसके वासी हो गये थे और बहुत सुसंस्कृत हो चुके थे। हालांकि उस समय 'हिंदू' शब्द चला नहीं था, पर उन्होंने जाति-प्रथा कायम कर दी थी, जो कर्म पर आधारित थी। ब्राह्मण वे थे जो पुरोहित और विद्वान् थे। क्षत्रिय वे थे, जो योद्धा थे। इनमें से ही राजा बनते थे, जो राज्य करते थे, रक्षा करते थे और राज्य का काम चलाते थे। इनके नीचे वैश्य थे, जिनका कार्य व्यापार करना और अर्थतंत्र चलाना था। इनके नीचे शूद्र थे। सारे कठिन कार्य इन्हीं के जिम्मे थे। ये मजदूरी करते, चाकरी करते और कारीगरी का काम करते।

---

१. अर्थ सिद्ध हुआ।

ब्राह्मण सारे धार्मिक अनुष्ठान तो करते ही थे, साथ में राजा को परामर्श देते और उनका पथ-प्रदर्शन भी करते थे। अतः राजा शुद्धोधन ने अपने पुत्र का भविष्य जानने की लालसा से ब्राह्मणों को निमंत्रित किया।

पहले ब्राह्मण जिन्होंने बुद्ध को देखा, काल देवल थे। इन्हें अनेक सिद्धियां और दिव्यदृष्टि प्राप्त थी। बालक बुद्ध इन्हें दिखाये गये। उन्हें देखकर पहले वे हंसे, फिर रोने लगे। राजा उन्हें रोता देखकर भयभीत हुए और पूछा, "आप रो क्यों रहे हैं ? मेरे पुत्र पर दुर्भाग्य की छाया तो नहीं पड़ रही है ?"

,,नहीं, महाराज! दुर्भाग्य की तो कोई बात नहीं है। मैं हंसा, क्योंकि मुझे यह सौभाग्य प्राप्त हुआ कि मैंने उस बालक के दर्शन किये, जिसे आगे चलकर पूर्ण ज्ञान प्राप्त होगा, वह बुद्ध बनेगा, और मैं रोया अपने दुर्भाग्य पर कि जब वह अपना ज्ञान संसार को बांटेगा, उस समय उसके प्रवचन सुनने के लिए मैं जीवित नहीं रहूंगा। अतः हे राजन्, आप हर्षित हों। आपका पुत्र संसार का महानतम व्यक्ति होगा।"

यहां यह बता देना आवश्यक है कि ज्ञान प्राप्ति अथवा बोधि-प्राप्ति की बात उस समय के धार्मिक व्यक्तियों को पूर्णतः ज्ञात थी। इसकी प्राप्ति के लिए वे संसार के सारे सुख और घरबार छोड़कर संन्यास लेते थे। 'बुद्ध' का अर्थ ही है जिसे बुद्धि प्राप्त हो गई, ज्ञान प्राप्त हो गया हो। यह शब्द अप्रचलित नहीं था। हर व्यक्ति को, जो आध्यात्मिकता की एक ऊंचाई तक पहुंच जाता था, 'बुद्ध' कहा जाता था। राजा शुद्धोधन यह सोचकर कि उनका पुत्र आध्यात्मिक मार्ग का अनुसरण करेगा, परेशान रहने लगे।

काल देवल ने बुद्ध के शरीर पर कुछ विशेष चिह्न देखकर अपनी भविष्यवाणी की थी। राजा शुद्धोधन ने इस भविष्यवाणी की सचाई नापने के लिए अपने राज्य के आठ ब्राह्मणों को निमंत्रित किया, जो काल देवल की भांति ही शरीर-चिह्न-विज्ञान में प्रवीण थे।

इन ब्राह्मणों में से सात ने बुद्ध के शरीर को देखकर घोषित किया कि यदि इस बालक ने संसारी रहना निश्चित किया तो सम्राट बनेगा और यदि यह संसार छोड़कर ज्ञान-प्राप्ति के मार्ग पर चला तो 'बुद्ध' बनेगा। पर आठवें ब्राह्मण कोण्डन्य किसी द्विविधा में नहीं थे। उन्होंने कहा, "हे राजन्, तुम्हारा पुत्र आगे चलकर चार विशेष चिह्न देखेगा और उन्हें देखकर संसार त्यागकर बोधि-प्राप्ति के लिए निकल पड़ेगा। उसे बोधि मिलेगी और वह बुद्ध हो जायेगा।"

कोण्डन्य ने यह कहा ही नहीं, उसे अपने कहने पर इतना विश्वास था कि उसी समय उसने गृहस्थ-धर्म त्यागकर संन्यास ग्रहण किया और अपनी तरह के और अपने विचार के चार मित्रों को लेकर तप करने निकल पड़ा तथा अपने को बुद्ध के विचारों को सुनने-समझने योग्य बनाने लगा। कोण्डन्य ने शिशु सिद्धार्थ के बढ़ने और संबोधि प्राप्त करने की धैर्य-पूर्वक प्रतीक्षा की और उनके संबोधि प्राप्त करने पर कोण्डन्य और उनके चारों मित्रों ने बुद्ध से दीक्षा ली। ये चारों भगवान बुद्ध के पहले शिष्य बने और इन्होंने धर्म फैलाने में बुद्ध का बड़ा साथ दिया।

कोण्डन्य के कथन की दृढ़ता देखकर राजा शुद्धोधन बहुत घबराये और चिंतित रहने लगे। इधर सिद्धार्थ बढ़ते रहे, उन्हें जो देखता, देखता रह जाता। उनके शरीर की त्वचा में सुनहली

आभा थी, उनकी आंखें तीसी के फूल की तरह नीली थीं। उनके बाल नीलिमा लिये काले थे और उनका हर अंग बहुत सुघर था।

सिद्धार्थ के जन्म के सातवें दिन उनकी माता महामाया का देहांत हो गया, पर वे मातृ-स्नेह से वंचित नहीं रहे। उनकी मौसी प्रजापति ने उनका लालन-पालन अपने जिम्मे लिया। वे भी शुद्धोधन को ब्याही थीं। जिस दिन उसकी बड़ी बहन की मृत्यु हुई, उसी दिन उन्होंने भी एक शिशु को जन्म दिया था। उस शिशु को उन्होंने धाय के सिपुर्द किया और मातृवत् सिद्धार्थ की देखभाल करने लगीं।

कुछ वर्ष बाद सिद्धार्थ पाठशाला गये और वहां वे अपने समान राजवंश के बच्चों के साथ पढ़ने लगे। उनकी कुशाग्रता से पाठशाला के अध्यापक के चकित थे। बड़ी शीघ्रता से उन्होंने अनेक विषयों का अध्ययन किया और भाषा तथा अंकगणित में पारंगत हो गये। अनेक खेलों, कुश्ती और बाणविद्या में भी उन्होंने निपुणता प्राप्त की। हर विषय में उन्होंने ऐसी प्रवीणता दिखलायी कि उनके सहपाठी हैरान रह गये। अध्यापक जितना पढ़ाते थे, उससे अधिक और आगे की बात वे स्वयं जान लेते थे। कद उनका लंबा था, शरीर सशक्त और सुडौल। स्वभाव इतना मधुर कि जो भी उनके संपर्क में आता, उन्हें प्यार करने लगता।

शाक्य राज्य में हर वर्ष हलवाहों का मेला लगता था, जिसमें राजा भी भाग लेते थे। वे सोने से मढ़े सींगवाले बैल और सोने के हल से पृथ्वी को जोतते थे। उनके नीचे के लोग चाँदी के हल से। जब सिद्धार्थ सात वर्ष के हुए तो उनके पिता उन्हें भी इस मेले में लेगये। मन न लगने पर उनके सेवक ने उन्हें एक वृक्ष के नीचे ले जाकर और आसन लगाकर बैठाया। सिद्धार्थ ज्यों ही

वहां बैठे, ध्यानमग्न हो गये। उनकी सांस किसी पुराने प्रशिक्षित ध्यान-योगी की तरह समरस थी। बड़ी देर बाद उनके सेवकों ने उन पर नजर डाली तो उनकी यह स्थिति देखकर चौंके और राजा शुद्धोधन को खबर की। वे दौड़े-दौड़े आये, उन्हें पुत्र के अनोखेपन का एक और प्रमाण मिला।

सिद्धार्थ के दयाभाव की अनेक कथाएं प्रचलित हैं। एक दिन वे अपने चाचा के पुत्र देवदत्त के साथ जंगल में टहल रहे थे। देवदत्त के हाथों में धनुष-वाण था। ऊपर एक बगुले को उड़ता देखकर देवदत्त ने निशाना साधा और बाण चला दिया। दोनों बच्चे पक्षी को पकड़ने दौड़े। सिद्धार्थ पहले पहुंचे। पक्षी मरा नहीं था। केवल घायल हुआ था। सिद्धार्थ ने उसके शरीर से बाण निकाला और किसी पत्ती का रस उसके घाव पर लगाया और पक्षी को शांत किया। देवदत्त ने वहाँ पहुंचकर पक्षी को लेना चाहा, पर सिद्धार्थ ने नहीं दिया। उनका कहना था कि यदि पक्षी मर जाता तो तुम्हारा होता, पर, क्योंकि पक्षी केवल घायल हुआ और मैं उसकी शुश्रूषा कर रहा हूं, अतः यह मेरा है। बात बढ़ी और न्यायालय में पहुंची। वहाँ न्यायाधीश ने सारी बातें सुनकर फैसला दिया, "जीवन उसका होता है, जो उसे बचाने का प्रयत्न करता है। जीवन उसका नहीं होता, जो उसे नाश करना चाहता है। पक्षी सिद्धार्थ का है।"

इस बीच राजा शुद्धोधन कभी ब्राह्मणों की भविष्यवाणी पर विचार करते तो कभी अपने पुत्र के भविष्य की सोचकर चिंता में डूबे रहते। चिंता से मुक्ति पाने के लिए पहले सात ब्राह्मणों को उन्होंने फिर से निमंत्रित किया। कोण्डन्य तो लापता हो चुके थे। सातों ब्राह्मण आये तो राजा ने उनसे पूछा, "कोण्डन्य

के चार चिह्नों का क्या अर्थ है?" ब्राह्मणों ने उन्हें बताया कि सिद्धार्थ कभी बूढ़े, बीमार, मृतक और संन्यासी को, एक के बाद एक देखेंगे और फिर संसार का त्याग कर देंगे और संबोधि प्राप्ति के लिए प्रयत्नशील होंगे। राजा ने सोचा कि सिद्धार्थ को ये दृश्य दिखाई ही नहीं देने चाहिए। इसलिए उन्होंने तुरंत अपने अनुचरों को आज्ञा दी कि कोई बूढ़ा, बीमार या मृतक सिद्धार्थ के सामने न आने पाये और न उन्हें कोई संन्यासी दिखाई दे। इस कार्य के लिए विशेष रक्षक नियुक्त किये गए। सिद्धार्थ की चाकरी में केवल नवयुवक लगाये गये। उनके सामने वृद्धावस्था, रोग और मृत्यु की बात करना भी वर्जित था। संन्यासी उनसे मीलों दूर रखे जाते। बन-बाग की मुर्झायी पत्तियाँ भी उनकी राह से हटा दी जातीं, जिससे सिद्धार्थ अवसान और मृत्यु का कोई दृश्य ही न देख सकें।

साथ-साथ सिद्धार्थ को अधिकाधिक सुविधाएं दी गयीं और उनके चारों ओर आनंद के स्रोत बिखेरे गए। उनके रहने के लिए गर्मी, जाड़े, बरसात के अनुसार तीन महल बनवाये गए। बड़े-बड़े उद्यान सजाये गए, उनके सरोवरों में सुन्दर मछलियां पाली गयीं और कमल खिलाये गए।

इस वातावरण में सिद्धार्थ जवान हुए। वे बड़े सशक्त और सुन्दर थे, उनकी स्मरण-शक्ति बड़ी तीव्र थी। कलाओं के मामले में वे अपने साथियों से अधिक प्रवीण थे और विद्या तथा बुद्धि में तो उन्होंने अपने समय के बड़े-बड़े पंडितों को परास्त कर दिया था।

अब राजा शुद्धोधन ने सिद्धार्थ के विवाह का निश्चय किया और सिद्धार्थ के चुनाव के लिए राज्य की सारी विवाह-योग्य कुमारियों को अपने महल में निमंत्रित किया। इनमें यशोधरा

नाम की एक सुन्दर तथा आकर्षक युवती भी थी। इसे सिद्धार्थ ने पसंद किया और राजा ने उसके साथ सिद्धार्थ का विवाह बड़ी धूमधाम से किया। जिस समय सिद्धार्थ उन्तीस वर्ष के होनेवाले थे, यशोधरा गर्भवती हुई और राजा शुद्धोधन सोचने लगे, सबकुछ उनकी इच्छा के अनुकूल चल रहा है। सिद्धार्थ को संसार के सारे सुख प्राप्त थे। शरीर की असारता के सारे चिह्नों से उन्हें अपरिचित रखा गया था, पर वे किन्हीं विचारों में डूबे रहते थे। एक दिन परियों की कहानी की तरह राजा शुद्धोधन द्वारा सिद्धार्थ की आंखों के सामने खड़ी की गयी दीवार ढह गयी और वस्तुस्थिति उनकी समझ में आ गयी। वस्तुस्थिति की यह समझ ही कि जीवन दुःखमय है, बुद्ध के उपदेशों की रीढ़ बनी।

२ / मनुष्य की चार अवस्थाएं

सिद्धार्थ सारी सुख-सुविधाओं में रहते हुए भी व्याकुल रहते थे। एक दिन उन्होंने अपने रथवाहक छन्न को बुलाकर रथ तैयार करने की आज्ञा दी। छन्न चार सुन्दर सफेद घोड़े एक सुन्दर रथ में जोतकर ले आया। सिद्धार्थ ने घोड़ों की रास अपने हाथ में ली और घोड़ों को गांव की ओर बढ़ाया। घोड़े बढ़िया थे, रथ सुन्दर। सिद्धार्थ रथ को चला रहे थे, वे देवता की गरिमा से व्याप्त थे और देवता जैसे ही सुन्दर लग रहे थे।

सिद्धार्थ अधिक दूर नहीं गये थे कि उन्हें सड़क पर एक थका, कुबड़ा-सा, बूढ़ा दिखाई दिया। उसे देखकर वे चकित हुए। रथ रोककर उन्होंने छन्न से पूछा, "छन्न, यह आदमी-सा तो दीखता है, पर इसके बाल सफेद क्यों हैं? दांत इसके क्यों नहीं हैं? इसकी त्वचा इतनी मुरझायी और शुष्क क्यों है? इसकी कमर क्यों झुक गयी है और इसकी पसलियां क्यों दिखाई देती हैं? इसकी आखें तो देखो, कैसी कोटर में धंसी हुई हैं! लाठी के सहारे यह चल रहा है! यह कैसा आदमी है?"

सिद्धार्थ के प्रश्नों की सरलता के आगे छन्न सारी राजाज्ञा भूल गया। उसने उत्तर दिया, "यह आदमी बूढ़ा है। यह बहुत दिनों से इस पृथ्वी पर रह रहा है। इसकी उम्र साठ-सत्तर या अस्सी वर्ष की हो गयी है, इसलिए इसका शरीर क्षीण हो गया है और नष्ट हो रहा है। राजकुमार, इसमें आश्चर्य की कोई बात नहीं है। यही सब के साथ होता है। हम सभी बूढ़े होते हैं।"

"हम सभी बूढ़े होते हैं, का अर्थ यह तो नहीं है कि हम सभी इस व्यक्ति की तरह हो जायंगे ? क्या यशोधरा, तुम, मेरे सारे युवक साथी और मैं भी इस बूढ़े की तरह दिखाई देने लगेंगे ?"

"हां, महाराज ! यही मनुष्य की गति है।"

उत्तर सुनकर सिद्धार्थ ऐसे परेशान हुए कि उनके लिए रथ आगे बढ़ाना कठिन हो गया। उनके मस्तिष्क में हलचल मची हुई थी, उनसे बोला नहीं जाता था। वे महल में लौट आये। राजकुमार का उड़ा हुआ चेहरा और उन्हें जल्द लौटा देखकर शुद्धोधन ने छन्न से पूछा, "छन्न, क्या बात है ?"

छन्न ने सारी कथा कह सुनाई। राजा थोड़ा हताश हुए, पर वे शीघ्र हारनेवाले न थे। सिद्धार्थ के मस्तिष्क से बुढ़ापे-संबंधी विचार निकालने के लिए उन्होंने विशेष उत्सव का प्रबंध किया। नाटक-मंडलियां नाटक के लिए बुलायी गयीं और नाच-गाने होने लगे। रक्षकों की संख्या उन्होंने दूनी कर दी और आज्ञा दी कि उनकी पूर्व आज्ञाओं का पालन दृढ़ता से किया जाये।

एक बार फिर सिद्धार्थ घूमने निकले और इस बार उन्हें एक बीमार आदमी दिखाई दिया। वह इतना अशक्त था कि खड़ा नहीं हो सकता था। पीड़ा से जमीन पर लेट रहा था। उसकी आंखें लाल थीं और मुंह से झाग निकल रहे थे। पहले की तरह सिद्धार्थ ने छन्न से पूछताछ की और छन्न ने सिद्धार्थ को इस दृश्य का अर्थ बताया। एक बार फिर सिद्धार्थ चिंता में डूब गये।

उन्होंने छन्न से पूछा, "छन्न, क्या ऐसी स्थिति सभी की होती है ?"

"हां, कोई भी बीमार पड़ सकता है। पर यदि मनुष्य अपने खान-पान के प्रति सजग रहे, स्वच्छता के नियमों का पालन करता रहेऔर व्यायाम करता रहे तो उसके सदा स्वस्थ रहने की संभावना है। अतः यह चिंता का विषय नहीं है।" छन्न ने बात संभालते हुए उत्तर दिया।

"चिंता का विषय नहीं है! पहले मैंने वृद्धावस्था और शरीर के अवसान की भयानकता देखी और अब देख रहा हूं कि मनुष्य की इस बीमार व्यक्ति की-सी असहाय स्थिति हो सकती है।"

पहले की तरह ही इस बार भी सिद्धार्थ आगे नहीं बढ़ पाये और वहीं से भारी मन लिये वापस लौटे।

तीसरी बार जब सिद्धार्थ छन्न के साथ घूमने निकले तो इस बार उन्हें शवयात्रा दिखाई दी। जिस शव को लोग कंधे पर ढो रहे थे, वह मूर्ति-सा निश्चल पड़ा था और साथ के लोग जोर-जोर से रो रहे थे और अपनी छाती पीट रहे थे। इन सबका अर्थ पूछने पर छन्न बोला, "मृत्यु मनुष्य के जीवन का अंत है। वृद्धावस्था के कारण जब मनुष्य का शरीर चल नहीं पाता तो मृत्यु आती है। बीमारी से भी आदमी मर सकता है। सांस रुक जाती है और दिल की धड़कन बंद हो जाती है। पर इसमें किसी तरह के आश्चर्य की बात नहीं है। यह जन्म की तरह सार्वभौम है, क्योंकि जो पैदा हुआ है, वह मरेगा ही। जो जीता है, उसे किसी-न-किसी दिन मरना ही है। कोई मौत को रोक नहीं सकता; क्योंकि यह मौत हर प्राणी की प्रकृति में है, अतः चिंता न करें और दीर्घ-जीवन की आशा करें।"

सिद्धार्थ इस दृश्य और पहले के जो दृश्य देखे थे, उन पर विचार करने लगे—"तो बुढ़ापे का दुःख, बीमारी का कष्ट, फिर

मृत्यु का दुःख, यही मनुष्य का प्राप्य है और यही उसकी नित्य गति है ? जीवन दुःख-ही-दुःख है। क्या इस दुःख से बचने का कोई उपाय नहीं है ? क्या मुझे और उन सबको, जिन्हें मैं प्यार करता हूं, इस बुढ़ापे, बीमारी और मृत्यु का कष्ट भोगना ही पड़ेगा?"—ये और इसी तरह के अन्य प्रश्न सिद्धार्थ लौटते समय अपने से करते रहे।

एक बार फिर, और अंतिम बार, सिद्धार्थ—छन्न के साथ घूमने निकले। इस बार फिर पहले की तरह, पर बिल्कुल विपरीत प्रकार का दृश्य उनकी प्रतीक्षा कर रहा था। उन्होंने देखा कि एक आदमी सिर मुंड़ाये खड़ा है। सबेरे की धूप में उसके गेरूए नारंगी रंग के कपड़े चमक रहे हैं और उसके हाथ में भिक्षापात्र है। उसके मुख पर शांति है, मुद्रा विचार-पूर्ण है और उसकी आंखें पृथ्वी पर झुकी हैं। सिद्धार्थ को लगा कि इस मनुष्य के मन में शांति है और यह आनंददायक विचारों में डूबा है।

सिद्धार्थ ने यहीं अपने रथ को रोक दिया और छन्न से पूछा, "छन्न, यह व्यक्ति कौन है ? क्या यह आदमी है ? मुझे तो यह देवता-सा लगता है। देखो, कितना शांत और निर्द्वन्द्व है। लगता है, इस संसार के दुःख और सुख उसे छू नहीं पा रहे हैं।"

"युवराज, यह संन्यासी है। इसने बुढ़ापे, बीमारी और मृत्यु के कष्ट को देखकर संसार छोड़ दिया है और इन कष्टों से मुक्ति पाने का हल ढूंढ़ रहा है। इसके घर नहीं है, यह कंदराओं में अथवा वृक्षों के नीचे रहता है, भिक्षा से प्राप्त थोड़ा-सा भोजन एक बार करता है। सादगी से रहता है, मन, वचन, कर्म से पवित्र रहने की कोशिश करता है और तपस्या द्वारा संसार के कष्ट से

मुक्ति पाने का प्रयत्न कर रहा है। यह चलता ही रहता है और लोगों को पवित्र जीवन आर आनंद प्राप्ति का मार्ग बताता है।"

यही चौथा चिह्न अथवा दृश्य था, जिसके सिद्धार्थ को दिखाई देने की ब्राह्मणों ने घोषणा की थी। इस दृश्य से सिद्धार्थ बहुत प्रभावित हुए। इस बार वे महल की ओर नहीं मुड़े, अपने विचारों में डूबे बढ़ते ही गये और अपने आनंद उद्यान में पहुंचे। यहां स्वादिष्ट भोजन, मद्य, नर्तकियां, गायक, वादक, कवि और विद्वान् उनके मनोरंजनार्थ उनकी प्रतीक्षा कर रहे थे। पर यहां का कोई भी आकर्षण उन्हें आकृष्ट नहीं कर सका। वे अपने विचारों में डूबे रहे और उन्होंने निश्चय किया कि मैं भी संन्यास ग्रहण करूंगा, संसार को त्याग दूंगा और दुःख से मुक्ति पाने का मार्ग ढूंढूंगा।

अपने विचारों में डूबे, टहलते-टहलते, वे एक पेड़ की छाया में बैठ गये। जब वे इस प्रकार थके, अपने विचारों में मग्न, बैठे थे कि उनके महल से तेजी से घोड़ा दौड़ाता उनका एक सेवक उनके पास आया और सूचना दी कि राजकुमारी यशोधरा ने उन्हें पुत्र-रत्न प्रदान किया है। यह सूचना सुनकर उन्हें प्रसन्न होना चाहिए था, पर उन्हें लगा कि एक बंधन और आ गया। वे उठ खड़े हुए और महल की ओर चले। उन्होंने सोचा, आगे का जो मार्ग मैंने निश्चित किया है, उससे अब कोई मुझे, मेरा पुत्र भी, विचलित नहीं कर सकता। मैं अवश्य ही संन्यास ग्रहण करूंगा।

राजा शुद्धोधन को सिद्धार्थ की परेशानी का अंदाज लग गया। वे समझ गये कि ब्राह्मणों की भविष्य-वाणी सफल होने वाली है। पर सिद्धार्थ को अपने संसार में रखने के अंतिम प्रयत्न के रूप में उन्होंने उनके पुत्र-जन्म का उत्सव बड़े ठाठ-बाट से मनाया।

इस उत्सव में राज्य के श्रेष्ठ वादक और गायक बुलाये गए, सुन्दर और श्रेष्ठ नर्तकियां निमंत्रित हुईं। भोजन बहुत स्वादिष्ट बनाया गया। अपने पिता के सम्मान-स्वरूप इस उत्सव में सिद्धार्थ ने भाग अवश्य लिया, पर उन्हें इन सबमें कोई रस नहीं आया। वे अपने विचारों में ही डूबे रहे और रात घिरी तो ऊंघने लगे। ऊंघते के सामने नाचना-गाना व्यर्थ समझकर नर्तकियों ने अपना कार्यक्रम समाप्त कर दिया और राजकुमार के जागने की प्रतीक्षा में आराम करने लगीं। शीघ्र ही वे सब गहरी नींद में सो गयीं। सिद्धार्थ जब जागे तो उन्हें यह देखकर आश्चर्य हुआ कि जो उनके मनोरंजनार्थ प्रयत्नशील थे, वे सभी गहरी निद्रा में निमग्न हैं। अरे! उनकी मुद्रा कैसी बदल गयी है! ये प्रसिद्ध गायिकाएं और नर्तकियां अपने आसनों और जमीन पर फैली कितनी घृणास्पद लगती हैं! कुछ की नाक बज रही थी, कुछ पशुओं की तरह नींद में अपने दांत पीस रही थीं। कुछ ही पहले का सौंदर्य कुरूपता में बदल गया था। इस दृश्य ने सिद्धार्थ के मन में विचारों के घड़े को ऊपर तक भर दिया। वे चुपचाप उठे और उन्होंने छन्न को बुलाकर अपने प्रिय अश्व कंथक को लंबे सफर के लिए तैयार करने की आज्ञा दी।

इस संसार को त्यागने से पहले उन्हें अपने एक कर्तव्य का ध्यान आया। उनके पुत्र के आगमन और उनके संसार-त्याग का निश्चय एक ही समय हुआ था। अतः पुत्र का दर्शन आवश्यक था। वे महल छोड़ने के पहले उस कमरे के सामने रुके, जहां उनकी पत्नी और पुत्र सोये थे। यशोधरा ने अपने पुत्र को छाती के निकट सुला रखा था और उनका हाथ बच्चे के मुंह को ढंके था। सिद्धार्थ को भय हुआ कि अपने पुत्र का मुंह देखने के लिए यदि वे अपनी पत्नी का हाथ उठाते हैं तो वे जग जायेंगी और

यदि हाथ नहीं उठाते हैं तो उन्हें पुत्र-दर्शन के विना ही चले जाना पड़ेगा। उन्होंने तुरंत निश्चय किया, "पुत्र को देखे विना ही मुझे चले जाना है, पर मैं जिसकी खोज में जा रहा हूं, वह मिलने पर मैं फिर यहां आऊंगा और पत्नी और पुत्र को देखूंगा।"

अर्ध-रात्रि हो रही थी। उस समय सिद्धार्थ छन्न के साथ कपिलवस्तु से विदा लेने के लिए निकले। शहर के फाटक के बाहर आकर उन्होंने मुड़कर एक बार फिर अपने महल की ओर देखा। महल चांद की शीतल छाया में सो रहा था। इस महल में उन्होंने अबतक की अपनी जिंदगी गुजारी थी और इसी महल में वे सब सो रहे थे, जिनको सिद्धार्थ जानते थे और प्यार करते थे।

घोड़े पर चढ़ कर वे अनोमा नदी के किनारे पहुंचे। अनोमा के इस पार शाक्यों का राज्य था और उस पार मगध का राज्य था। अनोमा के उस पार पहुंचकर सिद्धार्थ ने घोड़े से उतर कर अपने रेशमी वस्त्र और आभूषण उतार कर छन्न को दे दिये और गेरुए वस्त्र धारण कर अपनी तलवार से अपने सिर के बाल काट दिये, हाथ में भिक्षा-पात्र ले लिया तथा छन्न को कंथक के साथ वापस लौटने को कहा। छन्न लौटने को तैयार नहीं हुआ, वह सिद्धार्थ के साथ ही रहना चाहता था। इस पर सिद्धार्थ ने उसे प्रेम से समझाया कि वह राजमहल जाकर उनके वस्त्र और आभूषण उनके पिता को दे दे और उनके माता-पिता तथा उनकी पत्नी से कहे कि वे चिंता न करें। मैं बुढ़ापे, बीमारी और मृत्यु के कष्ट से सदा के लिए मुक्ति पाने का उपाय खोजने जा रहा हूं। जब मैं राह पा लूंगा, तब लाटूंगा और उन्हें भी यह राह बताऊंगा। उस समय उन्हें सचमुच प्रसन्नता होगी।

छन्न तो लौटने और सिद्धार्थ का संदेश ले जाने को तैयार हो गया, पर उनके घोड़े कंथक ने आगे बढ़ने से इन्कार कर

दिया। उसे भी सिद्धार्थ को समझाना पड़ा, तव कहीं वह महल की ओर बढ़ा, पर थोड़ी ही दूर चलकर वह सिद्धार्थ की ओर मुड़ा। उसकी आंखों से आंसू झर रहे थे। वह राजकुमार की ओर निर्निमेष देखता रहा, जबतक कि वे आंखों से ओझल न हो गए। सिद्धार्थ के बिछोह से उसे गहरी चोट लगी और उसने वहीं अपने प्राण त्याग दिये।

३ / संबोधि की प्राप्ति

सिद्धार्थ ने संसार से कटकर भ्रमणशील संन्यासी का जीवन व्यतीत करना आरम्भ किया। अनोमा उनके इस परिवर्तन की साक्षी की तरह पीछे रह गयी। उनकी तरह का जीवन व्यतीत करने वालों की उस समय कमी नहीं थी। सिद्धार्थ भिक्षा से भोजन प्राप्त करते और रात जहां भी सुविधा मिलती, बिताते। कोई उन्हें साधु कहता, कोई संन्यासी, कुछ गौतम भी कहते थे, पर यह कोई नहीं जानता कि वे राजकुमार सिद्धार्थ हैं।

जब सिद्धार्थ मगध के राजगृह नगरी में पहुंचे तभी लोग उन्हें पहचान सके। वहां के लोग उनकी गरिमा देखकर चकित हुए और बिम्बसार से जाकर कहा, "महाराज, आपके राजगृह में गौतम नाम का एक संन्यासी आया हुआ है। वह इतना मधुर, विनम्र और सुसंस्कृत हैं कि देखते ही बनता है।"

'गौतम' नाम सुनते ही बिम्बसार को आभास हो गया कि गौतम कोई अन्य नहीं, उनके पड़ोसी राज्य के उनके मित्र राजा शुद्धोधन का पुत्र सिद्धार्थ है। संभवतः सिद्धार्थ के गृह-त्याग का समाचार उनके पास पहले ही पहुंच गया था। बिम्बसार उनसे मिलने तुरन्त निकल पड़े और जब भेंट हुई तो बिम्बसार ने उनसे कहा, "सिद्धार्थ, यह तुम क्या कर रहे हो? इधर-उधर क्यों घूम रहे हो? क्या तुम्हारे माता-पिता से तुम्हारा झगड़ा हो गया है? तुम उनके पास न रहना चाहो तो न सही, तुम

मेरे पास रहो और यह वेश त्याग दो। मैं तुम्हें मगध का आधा राज्य देता हूं।"

सिद्धार्थ ने उनका प्रस्ताव आदर-पूर्वक अस्वीकार कर दिया और बताया कि वे ऐसी प्रसन्नता की खोज में निकले हैं, जिसकी भौतिक सुख-सामग्री से कोई समता नहीं है।

सिद्धार्थ के गृह-त्याग और अध्यात्म-मार्ग पर निकल पड़ने की बात कोण्डन्य के कानों तक पहुंची, जिन्होंने उनके इस नये जीवन की भविष्यवाणी की थी। वे तुरन्त सिद्धार्थ का साथ देने के लिए निकल पड़े। उनके चारों मित्र भद्दिय, वप्पा, महानाम और अस्सजि भी उनके साथ आये। वे पांचों ही सत्य की खोज में लगे हुए थे। सिद्धार्थ को मिलाकर अब ये छः हो गये। ये छहों एक साथ रहकर भ्रमण करने लगे।

आज की तरह उस समय भी प्रथा यही थी कि लोग संबोधि-प्राप्ति के लिए किसी को गुरु बनाते थे। गुरुओं की कोई संस्था नहीं थी। जो भी अपने ज्ञान और अनुभव के कारण प्रसिद्ध हो जाता, लोग उसके पास पहुंचने लगते। उस समय उत्तर भारत में आलार कलाम नाम के गुरु की अधिक प्रसिद्धि थी। ध्यान में अनन्त शून्य की स्थिति तक उनकी पहुंच थी, जिसे उन दिनों 'सातवां ध्यान' कहते थे। सिद्धार्थ और उनके साथी उनकी शरण में गये और उनकी शिष्यता स्वीकार कर उनकी बतायी राह पर चलने लगे। सिद्धार्थ जो उनके गुरु सिखा सकते थे, वह सीखने के लिए कठिन परिश्रम करते और एक दिन आलार को सिद्धार्थ से कहना पड़ा कि अब सिद्धार्थ को सिखाने के लिए उनके पास कुछ बाकी नहीं रहा। उन्होंने गौतम से कहा, "तुम मेरे पास रहो और अन्य शिष्यों के प्रशिक्षण में मेरी सहायता करो।"

"आप क्या बस इतना ही जानते हैं? क्या आप मुझे बीमारी, बुढ़ापे और मृत्यु के कष्ट से मुक्ति पाने की राह नहीं बता सकते।" सिद्धार्थ ने पूछा।

"जो मैं नहीं जानता, वह तुम्हें कैसे सिखा सकता हूं। जो तुम चाहते हो, वह सिखाने वाला तो आज सारे संसार में कोई नहीं है।"

यह सुनकर सिद्धार्थ ने उनसे विदा ली और अपने साथियों के साथ भ्रमण करने लगे। जो भी उन्हें मिलता, वे वह सब सिखाते जो उन्होंने सीखा था और उत्तम गुरु की खोज करते। अपनी खोज में वे उद्दक रामपुत्र से मिले। ध्यान की एक ऊंची अवस्था की स्थिति को, जिसमें संवेदनशीलता और असंवेदन-शीलता का कोई ज्ञान नहीं रह जाता, उनके स्वर्गीय गुरु राम ने प्राप्त किया था। इसे उन दिनों 'आठवां ध्यान' कहते थे, जिसकी प्राप्ति में वे प्रयत्न-शील थे। उद्दक रामपुत्र के पथ-प्रदर्शन में सिद्धार्थ ने वह स्थिति प्राप्त कर ली। यह देखकर उन्होंने नम्रतापूर्वक सिद्धार्थ से अपने सभी शिष्यों का गुरुपद संभालने की प्रार्थना की, पर उन्होंने स्वीकार नहीं किया। उद्दक को छोड़कर वे ऊरुवेला पहुंचे और वहां उन्होंने और उनके साथियों ने कुछ दिन ठहरने का निश्चय किया। यहां निकट ही शांतिदायक जंगल था, स्वच्छ जल की नदी थी और पास ही एक गांव था, जहां से वे भिक्षा प्राप्त कर सकते थे। उन्होंने निश्चय किया कि वे यहां रहकर बिना गुरु की सहायता के जो प्राप्त करना चाहते हैं, उसके लिए प्रयत्न करेंगे।

सिद्धि के लिए उस समय कायाकष्ट की विधि प्रचलित थी। इसी का अनुसरण सिद्धार्थ और उनके साथी करने लगे। पहले वे दिनभर में केवल एक बार भोजन करते, फिर दो दिन

में एक वार, फिर तीन दिन में एक वार करने लगे। वाद में उन्होंने भिक्षा लेना ही वन्द कर दिया और जंगल के कंदमूल-फल और पत्तियों पर जीवन निर्वाह करने लगे। परिणाम यह हुआ कि उनका शरीर दुर्वल हो गया, हड्डियां निकल आयीं, त्वचा मुर्झा गयी और आंखें कोटर में चली गयीं। वे ऐसे लगने लगीं, जैसे गहरे कुंए में पत्थर पड़े हों। उनके शरीर में जगह-जगह दर्द होने लगा और भूख की पीड़ा उन्हें सताने लगी। शरीर को कष्ट देने की क्रिया यहीं समाप्त नहीं हुई। वे सांस को इतनी देर तक रोकते कि उनका सिर चकराने लगता और ऐसा जान पड़ता कि सिर फट जायेगा। दिन में वे जलती धूप में रहते और रात को ऐसी कोठरी में, जहां हवा का प्रवेश होता, उनका जी घुटने लगता। जाड़े में बर्फ से ठंडे पानी में स्नान करते और शरीर के प्रति अपनी अप्रीति के प्रदर्शन के लिए वे कूड़े के ढेर पर पड़ गये चिथड़ों और मुर्दों के कफन से अपने शरीर को ढंकते। अपनी मानसिक शक्ति की परीक्षा के लिए वे श्मशान में अकेले रात विताते। ऐसे एकांत स्थानों में जंगली पशुओं का भय भी उन्हें नहीं व्यापता था।

यह सब करते हुए वे ध्यान में लगे रहते, पर इसका कोई सुपरिणाम नहीं निकला। इतनी यातनाएं सहने के बाद भी सिद्धार्थ को यही लगा कि उन्हें कुछ भी प्राप्त नहीं हुआ। फिर एक दिन वे बेहोश हो गये। इस स्थिति में वे एक गड़रिये को मिले। उसने उन्हें अपने घर ले जाकर दूध पिलाया और उनकी सेवा-शुश्रूषा करने लगा। जबतक उन्हें उनका पूर्व स्वास्थ्य नहीं मिल गया, वे गड़रिये के पास ही रहे। स्वस्थ होने पर वे अपने पांचों साथियों से मिलने निकले। उनके साथी अभी तक काया-कष्ट में लगे थे। सिद्धार्थ को उन्होंने स्वस्थ स्थिति में देखा

तो उन्हें बहुत बुरा लगा। उन्हें लगा कि सिद्धार्थ ने निश्चित किये गए नियमों को तोड़ा है। उनके इस कार्य से वे इतने क्षुब्ध हुए कि सिद्धार्थ को अकेला छोड़कर अन्यत्र चले गये।

अकेले रह जाने पर सिद्धार्थ अपना स्वास्थ्य बनाने में लग गये। उनकी त्वचा में पूर्व की भांति स्वर्णिम आभा आ गयी और वे बत्तीस चिह्न, जिन्हें देखकर ब्राह्मणों ने उनके बुद्धत्व प्राप्त करने की भविष्यवाणी की थी, उनके शरीर पर उभर आये। वहाँ, निकट ही, एक धनाढ्य की कन्या सुजाता रहती थी। उसने यह मनौती मान रखी थी कि पुत्र प्राप्त होने पर वह गांव के बरगद के पेड़ के देवता को खीर चढ़ायेगी। इसी बरगद के नीचे सिद्धार्थ बैठे थे। आज ही सुजाता का देवी को खीर चढ़ाने का दिन था। स्थान को स्वच्छ करने सुजाता की दासी आयी तो उसने सिद्धार्थ को ही बरगद का देवता समझा और सुजाता को इसकी सूचना दी। सुजाता अपनी विशिष्ट खीर एक सोने के कटोरे में डालकर उसे रेशमी वस्त्र से ढंककर दौड़ी-दौड़ी आयी। सिद्धार्थ को देखकर वह अपनी दासी की तरह ही अभिभूत हो गयी। सिद्धार्थ ध्यान में निमग्न थे। स्वर्णिम आभा उनके शरीर से प्रस्फुटित हो रही थी। उन्हें देखकर उसने कहा, "भगवन, आप मनुष्य हों, या देवता, मेरी खीर स्वीकार करें। जिस सिद्धि के लिए आप तपस्या कर रहे हैं, वह आपको प्राप्त हो।"

सुजाता ने खीर भरा कटोरा सिद्धार्थ के हाथों में रखकर उन्हें आदरपूर्वक प्रणाम किया और विदा हो गयी। सोने का मूल्यवान कटोरा भी उसने गौतम को दे दिया है। इसका उसे ध्यान ही नहीं रहा।

जिसे गौतम वर्षों से खोज रहे थे, उसकी प्राप्ति का समय आ गया था। वे खीर के कटोरे को लेकर निकट की नदी निरंजरा के तटपर गये और कटोरा किनारे पर रखकर नदी में स्नान किया और फिर कटोरा गोद में रखकर बुद्धत्व प्राप्ति के प्रयत्न-मार्ग का अंतिम भोजन ग्रहण किया। भोजन करके हाथ धोये और कटोरे को पानी में तैराकर कहा, "यदि मुझे आज संबोधि की प्राप्ति होनी है तो यह कटोरा नदी के बहाव के विपरीत दिशा में बहे।" कटोरा विपरीत दिशा की ओर ही बहा। अब गौतम ने नदी के किनारे जंगल में जाकर विश्राम किया। संध्या समय गौतम उठे और बोधिवृक्ष की ओर चले। रास्ते में वे श्रोत्रिय नाम के घसियारे से मिले। उसने उन्हें आसन के लिए कुश दिये। वट-वृक्ष के नीचे कुशासन पर बैठकर पूर्व की ओर अभिमुख हो गौतम ने ध्यानासन लगाया और उस ध्यान में बैठे, जिसके द्वारा उन्होंने वैशाखपूर्णिमा को संबोधि पायी और बुद्धत्व प्राप्त किया।

ध्यान शुरू करने पर उनके ध्यान में पहले प्रेत आये, जिन्होंने उन्हें डराने की बहुत चेष्टा की, फिर वे अनेक मानसिक संवेद-नाओं से गुजरे। उन्हें अपने सारे पूर्व जन्म याद आये। किस जन्म में वे क्या थे, यह उन्होंने देखा। किस तरह वस्तुएं रूप लेती हैं और नष्ट हो जाती हैं, इसपर उन्होंने विचार किया। उनका मस्तिष्क पवित्र हो गया और उन्होंने वेदनाओं की प्रकृति पर विचार किया। वे कैसे आती हैं और उन्हें कैसे नष्ट किया जा सकता है, यह जाना। उन्होंने कामेच्छा की वेदना को, अमरत्व की इच्छा को, भ्रम को तथा अन्य अनेक वेदनाओं को नष्ट किया और अंत में उन्हें मुक्ति मिली। आगे उन्होंने लोगों को अपने अनुभव बताते हुए कहा कि मैं आवागमन से मुक्त हो गया हूं। इस संसार का मेरे लिए कोई अर्थ नहीं है।

गौतम सात दिन इस ध्यान में रहे थे। जब वैशाख की पूर्णिमा समाप्त हो रही थी और सूर्य का उदय हो रहा था, तब उनका ध्यान टूटा। ध्यान टूटने पर भी वे कुछ समय तक बोधिवृक्ष के निकट ही रहे, उसके आसपास टहलते रहे, उस वृक्ष को कृत-ज्ञता-पूर्वक देखते रहे, जिसने उन्हें ध्यान करते समय अपनी छाया दी थी।

संबोधि प्राप्ति के बाद गौतम बोधिवृक्ष के नीचे बैठे हुए थे तो तपस्स और भल्लुक नाम के दो व्यापारियों ने उन्हें देखा और उन्होंने बुद्ध को चावल और शहद से बने मोदक का भोजन कराया। भोजन करने के बाद बुद्ध ने उन्हें अपना अनुभव सुनाया। उनका अनुभव सुनकर दोनों ने उनका शिष्यत्व ग्रहण किया और वे दोनों पहले गृहस्थ बौद्ध धर्मानुयायी बने। गौतम इस समय पैंतीस वर्ष के हो गये थे।

४ / मध्यम मार्ग

बुद्ध ने अब अपने विचार जन-जन तक पहुंचाने का निश्चय किया। वे किसी ऐसे व्यक्ति की खोज में लगे, जो उनके विचार शीघ्रता से समझ ले। ऐसे में उन्हें अपने प्रथम गुरु आलार कलाम की याद आयी, जो आध्यात्मिक मार्ग की पूर्णता की राह पर बहुत आगे बढ़ चुके थे। उनकी खोज करने पर पता चला कि उनकी मृत्यु हो चुकी है। उन्होंने अब राम के शिष्य उद्दक को तलाश किया तो मालूम हुआ कि उनकी भी मृत्यु हो चुकी है। अंत में उन्हें अपने पांच साथी याद आये, जिनके साथ उन्होंने तपस्या आरंभ की थी और जो उनसे नाराज होकर उन्हें छोड़ चुके थे। वे इस समय उनसे सौ मील की दूरी पर, वाराणसी के निकट, इसीपत्तना के मृगदाय उद्यान में रह रहे थे। यह यात्रा बुद्ध ने आरंभ की और पैदल चलते हुए एक संध्या को उनके निकट पहुंचे। बुद्ध को आता देख वे पांचों आश्चर्य में पड़ गये, पर उन्हें बुद्ध के उनसे अलग हो जाने पर जिस अपमान का अनुभव हुआ था, वह भी याद आया। बुद्ध जब उनके पास पहुंच रहे थे तो वे आपस में कटूक्तिपूर्ण बातें करने लगे, "देखो, अपने को संन्यासी कहलाने वाला गौतम आ रहा है। चाहता है आराम, और बनता है संन्यासी! हम उसकी उपेक्षा करेंगे। उसके सम्मान में न हम उसका भिक्षापात्र उठायेंगे, न उसका चीवर। चाहे तो वह यहां आये, बैठे, पर हम उसके लिए कुछ करेंगे नहीं।"

बुद्ध उनके निकट पहुंचने लगे तो उन्होंने देखा कि उनके गौतम में कुछ परिवर्तन आ गया है। वे भव्यता और शासन की

उस गुरु-गरिमा से मंडित हैं, जैसी उनके मुखपर उन्होंने पहले कभी नहीं देखी थी। यह देखते ही अनजाने उनके मन का क्रोध शांत हो गया। आगे बढ़कर उन्होंने उनका सम्मान किया। एक ने उनके हाथ से भिक्षा-पात्र और उनका अतिरिक्त चीवर ले लिया। दूसरे ने उनके लिए आसन तैयार किया और तीसरा जल लेने को दौड़ा।

उस संध्या को उन्होंने अपना पहला प्रवचन किया। इस प्रवचन को 'धर्मचक्रप्रवर्तन' नाम दिया गया। इस प्रवचन का बुद्ध के प्रवचनों में विशिष्ट स्थान है। उनके प्रवचन के मर्म को पूर्ण रूप से पहले-पहल कोण्डन्य ने समझा और अनुभूतियों के स्तर पर संबोधि प्राप्ति की। इस पर बुद्ध प्रसन्नता से कह उठे, "कोण्डन्य ने अनुभव कर लिया है, कोण्डन्य ने अनुभव कर लिया है।" कोण्डन्य ही वह ब्राह्मण थे, जिन्होंने सिद्धार्थ के बुद्धत्व प्राप्त करने की भविष्यवाणी की थी और उनके बुद्धत्व प्राप्त करने पर उनसे संबोधि प्राप्त करने की तैयारी में घर छोड़ कर संन्यासी हो गये थे। बुद्ध की सारी बातें उसी संध्या को समाप्त नहीं हो गयी थीं। आगे कई दिन चलीं। बुद्ध भिक्षा के लिए एक दिन उन पांचों में दो को भेजते और दूसरे दिन शेष तीन को। जो बातें उन दोनों ने नहीं सुनी होतीं, उन्हें वे फिर दूसरे दिन दुहराते। इस प्रकार सबका प्रशिक्षण पूरा करते रहे।

बुद्ध की शिक्षा के प्रधान अंग का यहां वर्णन करना समीचीन होगा। शास्त्र में इसका वर्णन बड़े ढंग से, गणित की सूक्ष्मता की भांति, किया गया है। इसकी उस समय आवश्यकता थी, क्योंकि उस समय लिखने का बहुत चलन नहीं था। गुरु अपनी शिक्षा इस ढंग से व्यवस्थित करता कि शिष्य उसे सरलता से कंठस्थ कर ले। इसी शैली से बुद्ध के सारे सिद्धान्तों

और नियमों का वर्णन एक विशेष पक्ष आर्य अष्टांगिक मार्ग, चार आर्य सत्य और रागों के पांच विभागों के रूप में किया गया है। यह शैली जटिल और दुर्बोध विचारों को एक शृंखला में बांध देती है और फिर उसको याद रखना और उसके मूल रूप में दूसरे को याद कराना सरल हो जाता है।

चार आर्य सत्य बुद्ध के दर्शन की आधार-शिला हैं— १. जीवन दुःखमय है, क्योंकि बीमारी, बुढ़ापा, असन्तोष और मृत्यु का भय इसे घेरे रहता है। २. दुःख का कारण तृष्णा अथवा संसार से इस प्रकार जुड़ना है कि उससे दुःख अर्थात् इंद्रिय-जन्य आनंद की इच्छा, परेशानियों से मुक्ति की इच्छा, जीते रहने की इच्छा पैदा होती है। ३. इसलिए दुःख के नाश का उपाय तृष्णा का निरोध है। ४. चौथा आर्य सत्य इच्छा को नष्ट करने का मार्ग बताता है। यही बुद्ध के उपदेश की रीढ़ है। उसे आर्य अष्टांगिक मार्ग या मध्यम मार्ग कहते हैं। इसे समझने के लिए बुद्ध ने अपने पांचों शिष्यों से कहा, "जो संसार त्याग देता है, उसे दो अतियों से बचना चाहिए। पहली अति है अनुरागों, विशेषतः कायानुराग में प्रवृत्त रहना। यह घृणित, असंस्कृत, अयोग्य और अलाभकर है। यह सांसारिक व्यक्तियों के ही योग्य है। दूसरी अति है कायाकष्ट, जो दुःखद है, कुरूप है और अलाभकर है। बुद्ध स्वयं इन दोनों अतियों से गुजर चुके थे। रागात्मक जीवन तो वह था, जो उन्होंने जवानी तक अपने महल में व्यतीत किया था और कायाकष्ट की विधि से भी वे परिचित थे, जिसे छोड़ने पर, उनकी वाणी को इस समय जो सुन रहे थे, रुष्ट हो गये थे। उन्होंने रागात्मक जीवन का इसलिए बहिष्कार किया; क्योंकि ऐसा जीवन आध्यात्मिक उन्नति में बाधक होता है और कायाकष्ट का इसलिए, क्योंकि वह मस्तिष्क को कमजोर बनाता है।

इन दोनों अतियों से बचने का उपाय मध्यम मार्ग अथवा आर्य अष्टांगिक मार्ग है। यह मार्ग दोनों अतियों, रागात्मक जीवन और कायाकष्ट से बचाता है। इस मार्ग की आठ आवश्यकताएं हैं—सम्यक दृष्टि, सम्यक् संकल्प, सम्यक् वचन, सम्यक् कर्मांत, सम्यक् आजीव, सम्यक् व्यायाम, सम्यक् स्मृति और सम्यक् समाधि।

सम्यक् दृष्टि का अर्थ है, जो चीज जैसी है, उसे वैसा ही जानना। जो चार आर्य सत्य बताये गये हैं, उनके अनुरूप जीवन की प्रकृति को देखना। सम्यक् दृष्टि को भी बारह भागों में उसके पहलुओं को बताने के लिए विभाजित किया गया है।

सम्यक् संकल्प का अर्थ है पवित्र चिंतन। काम, ईर्ष्या, क्रूर कर्मों आदि से मुक्त रहना। ये पूर्णता-प्राप्ति में बाधक हैं। सम्यक् संकल्प का सम्यक् वचन, सम्यक् कर्मांत, सम्यक् स्मृति और सम्यक् समाधि से निकट का संबंध है।

सम्यक् वचन का अर्थ है जितना विचारों को शुद्ध किया जाय, उसी शुद्धता के परिचायक शब्द हों। असत्य, चुगली, बेकार की बातों से अलग रहा जाये। बात सहृदयतापूर्ण हो, कठोर न हो। सम्यक् वचन उत्तेजित, तीव्र, दुराग्रहपूर्ण नहीं होते, न दूसरों को उत्तेजित करते हैं।

सम्यक् कर्मांत पांच भागों में विभक्त है। पहला है हत्या नहीं करना, सभी जीवों के प्रति उदारता और दयाभाव रखना। चोरी, परस्त्री-गमन और नशे से विमुक्ति। काममुक्ति और हत्या से बचने पर विशेष बल दिया गया है। इस प्रकार सम्यक् कर्मांत सम्यक् दृष्टि, सम्यक् संकल्प और सम्यक् व्यायाम से संबंधित है।

सम्यक् आजीव वहुत स्पष्ट है। जीविका के लिए कोई ऐसा व्यापार नहीं करना चाहिए, जिसमें बुद्ध के उपदेशों के विरुद्ध कार्य करना पड़े। न उसमें धोखा होना चाहिए और न शोषण और न उसमें किसी के प्रति अन्याय या नुकसान की गुंजाइश हो। बुद्ध के उपासक के लिए आदमियों के क्रय-विक्रय का धंधा, मांस बेचने का धंधा, विष या शराब बेचने का धंधा वर्जित है। उनके लिए सैनिक, शिकारी या मछुवा बनना भी उसी प्रकार अनुचित है, जिस प्रकार अत्यधिक व्याज पर ऋण प्रदान करना, वेश्यावृत्ति करना या चिकनी-चुपड़ी कहकर किसी को बहकाना। बुद्ध के जीवन का आदर्श तो गृहत्याग और सांसारिक भोगों से मुक्ति है। अतः जीवन को जितना सादा हो सके, बनाना चाहिए। जिन पर व्यापार या परिवार की जिम्मेदारियां हों, उन्हें भी सादगी से ही रहना चाहिए। सम्यक् आजीव की राहें सम्यक् दृष्टि, सम्यक् व्यायाम, सम्यक् स्मृति से संवंधित हैं।

दुर्गुणों से मुक्त होना और सद्गुणों को ग्रहण करना सम्यक् व्यायाम है। सम्यक् व्यायाम भी चार भागों में विभक्त है। उनके प्रतिपालन द्वारा भी आर्य अष्टांगिक मार्ग की सारी आवश्यकताओं को पूरा किया जा सकता है। सम्यक् व्यायाम द्वारा ही दस पूर्णताएं, जिनको परिमिताएं कहते हैं, प्राप्त की जा सकती हैं। वे परिमिताएं हैं दान, शील, निष्कामता, प्रज्ञा, वीर्य (पुरुषार्थ), शांति (सहनशीलता), सत्य, अधिष्ठान, दृढ़ संकल्प, मैत्री और उपेक्षा (समता)।

सम्यक् स्मृति आध्यात्मिक उन्नति के लिए सतत जागरूकता को कहते हैं। इसमें अपने मस्तिष्क को इस प्रकार प्रशिक्षित किया जाता है कि वह समझ सके कि यथार्थ क्या है और कल्पना के पीछे न लगे। इसमें एकाग्र रहकर १. शारीरिक वेदनाओं,

२. अनुभूतियों, ३. मस्तिष्क और ४. मस्तिष्क में उठने वाले विचारों को देखना होता है। इन चारों के प्रति जागरूक रह कर ही बोधि के सात अंगों—सतत जागरूकता, धर्म को तर्क के साथ ग्रहण करना, पुरुषार्थ, प्रीति (आनंद), प्रश्रब्धि (प्रशांति), समाधि और चित्त की समता को प्राप्त किया जा सकता है।

सम्यक् समाधि आर्य अष्टांगिक मार्ग में सहायक अंतिम बिंदु है। ऐसे ध्यान में सभी वस्तुओं की अनित्यता का भान होता है और निर्वाण प्राप्त होता है। ध्यान के लिए भी हर कार्य की तरह प्रशिक्षण और नियमों के पालन की आवश्यकता होती है। ध्यान में सांस एकरूपता से और धीरे-धीरे चलनी चाहिए। चित्त की समता प्राप्त करनी चाहिए आर जो इधर-उधर के विचार उठें, उन्हें धैर्यपूर्वक हटाते जाना चाहिए। ध्यान की राह में पांच रोड़े हैं, जिन्हें हटाकर या कम-से-कम कमजोर करके ही ध्यान आरंभ किया जा सकता है। ये हैं: कामुकता, अनिष्ट करने की इच्छा, आलस्य, परेशानी और संशय।

बुद्ध ने अपने पांचों साथियों को इसके अलावा और भी बहुत-सी बातें बतायीं। आत्मा नहीं है, इस सिद्धांत को भी विस्तार से समझाया। आत्मा को न मानना तो अनेक धर्मों के विपरीत विचार है और आत्मा को न मानने पर क्या बौद्ध धर्म को धर्म कहा जा सकता है? बौद्ध धर्म है, यह आर्य अष्टांगिक मार्ग से आगे सिद्ध हो जायेगा? बुद्ध दार्शनिक तर्क में, तर्क के लिए पड़ना पसन्द नहीं करते थे।

५ / संघ

जो भी प्रव्रज्या ग्रहण करता है, संघ का सदस्य हो जाता है और संघ का हर सदस्य बुद्ध द्वारा प्रणीत नियमों के अनुसार रहता है, अपने को व्यवस्थित करता है। पांचों साधुओं के प्रव्रज्या ग्रहण करने के बाद संघ तीव्रता से बढ़ा। गौतम के ये पांचों पुराने साथी, जिनके लिए बुद्ध ने अपना पहला प्रवचन मृगदाय वन में किया था, पहले से सत्य की खोज में थे और प्रव्रजित होने के पथ पर अग्रसर थे। पर इनके बाद जिन लोगों ने दीक्षा ली, उनकी कोई पूर्वपीठिका नहीं थी, न उन्हें धर्म के प्रति कोई रुचि अथवा इसका कोई ज्ञान था। वे सीधे-सादे गृहस्थ थे। अकस्मात् बुद्ध के संपर्क में आ गये थे। उस समय घर छोड़कर संन्यासी बन जाना साधारण बात थी, पर जो बुद्ध का संघ और उपदेश तेजी से बढ़ा, वह बताता है कि बुद्ध के उपदेश गत्यात्मक रूप से सशक्त और आकर्षक रहे होंगे। आकर्षण का तो विशेष कारण यह है कि बुद्ध के प्रवचन स्पष्ट और तुरन्त समझ में आने वाली सीधी-सादी भाषा में होते थे और अपनी बात समझाने के लिए वे दृष्टान्तों का भरपूर उपयोग करते थे। उनके उपदेशों की तीव्रता उनके उस उपदेश में देखी जा सकती है, जो उन्होंने मृग-दाय वन में किया था। वह लिखित रूप में प्राप्त है। एक दिन बुद्ध जब मृगदाय वन में बैठे अपने प्रवचन कर रहे थे, एक अति धनाढ्य के पुत्र ने उनके प्रवचन सुने। वह धन और संसार से ऊबा हुआ था और जीवन उसे बड़ा फीका लग रहा था। बुद्ध का उपदेश सुनने का फल यह हुआ कि संसार की असारता और

अपने वर्तमान जीवन की व्यर्थता उसकी समझ में आ गयी और उसने प्रवचन सुनने के वाद बुद्ध से तुरंत दीक्षा ले ली।

उसके गायव हो जाने पर उसके माता-पिता वहुत चिंतित हुये और उसके पिता उसे खोजने निकले। शाम को बुद्ध से उनकी भेंट हुई। बुद्ध ने उन्हें बताया कि उनके पुत्र ने उनसे दीक्षा ले ली है और उन्हें भी अपने उपदेशों का मर्म समझाया। वे इतने प्रभावित हुये कि बुद्ध के उपासक वन गये और घर में ही रहकर धर्म-प्रचार में उनकी सहायता करने लगे। उन्होंने सभी भिक्षुओं को, जो अब छः हो गये थे, अपने घरपर भोजन के लिए निमंत्रित किया।

बौद्ध भिक्षु जब किसी गृहस्थ के यहां भोजन करता है, धन्य-वाद के स्वरूप भोजन के बाद कुछ उपदेश देता है। प्रवचन की यह प्रथा भगवान बुद्ध ने उस समय यश के पिता के यहां आहार लेने के बाद जो उपदेश दिया था, उसी के कारण पड़ी। उस समय यश के पिता, उनकी माता, उनकी पत्नी (पूर्व) और उनके चौवन मित्र उपस्थित थे। चौवनों बुद्ध का उपदेश सुनकर ऐसे प्रभावित हुए कि इन सबने दीक्षा दिये जाने की प्रार्थना की और दीक्षित होकर संघ में शामिल हो गये। इस प्रकार संघ अब साठ भिक्षुओं का हो गया।

समय पाकर जब इन्हें संबोधि प्राप्ति हो गयी तब बुद्ध ने इनसे कहा, "भिक्षुओ, जाओ, और जन-हितार्थ उस सत्य का प्रचार करो, जिसका आरंभ, जिसका मध्य और जिसका अंत भी, कल्याण-कारी है। तुम लोगों को ऐसे लोग अवश्य मिलेंगे, जिनकी आंखें धूल से धुंधलायी नहीं हैं। उन्हें बताना, वे तुम्हारी बात सुनेंगे।"

उस समय के अनेक धर्म-गुरुओं की तरह बुद्ध भ्रमणशील थे। वे एक जगह से दूसरी जगह जाते और जो सुनता, उसको

उपदेश देते थे। पैंतालीस वर्ष तक धर्म का प्रचार-कार्य उन्होंने उत्तरी भारत और पूर्वी भारत में दूर-दूर तक भ्रमण करते हुए किया। केवल वर्षा ऋतु में वे भ्रमण करना बन्द कर देते थे और अपने शिष्यों के साथ किसी विशेष स्थान पर एकांतवास करते थे।

पहली यात्रा उन्होंने मृगदाय वन से उरुवेला के लिए आरंभ की। इस यात्रा में वे कई जगह ठहरे। रास्ते में एक जंगल में वे एक वृक्ष की छाया में बैठे थे। इस जंगल में कुछ लोग वन-विहार के लिए आये थे। तीस व्यक्ति थे, जिनके साथ उनकी पत्नियां भी थीं। एक के साथ उसकी पत्नी नहीं थी, वह एक वेश्या को साथ लाया था। जब वह लोग आनन्द-निमग्न थे, वेश्या अपने साथी की सारी चीजें लेकर भाग खड़ी हुई। जब लोगों को इसका पता लगा तो सभी वेश्या को खोजने लगे। अपनी खोज में उन्होंने एक वृक्ष के नीचे बुद्ध को बैठे देखा तो वेश्या के माल-मता लेकर भाग जाने के संबंध में बताकर पूछा, "क्या उन्होंने ऐसी स्त्री को कहीं जाते देखा है?"

बुद्ध ने कहा, "यह बताओ कि एक स्त्री का ढूंढ़ना अच्छा है या अपने को ढूंढ़ना?" बुद्ध के प्रश्न से वे चौंके और कुछ सोच-विचार के बाद उन्होंने उत्तर दिया, "अपने को ढूंढ़ना ज्यादा अच्छा है।" स्त्री को ढूंढ़ना छोड़कर वे बुद्ध का प्रवचन सुनने बैठ गये। उपदेश सुनकर उनकी आंखें खुल गयीं और वे सभी प्रव्रज्जित होकर संघ में शामिल हो गये।

ऊरुवेला में उन्हें तीन जटाजूटधारी साधु मिले, जो कस्सप कहलाते थे। पहला, जिसके ५०० चेले थे, ऊरुवेला का कस्सप कहलाता था, दूसरा, जिसके ३०० चेले थे, नदी का कस्सप कहलाता था और तीसरा, जिसके २०० चेले थे, गया का कस्सप कहलाता था। इन तीनों ने अपने शिष्यों के साथ बुद्ध का प्रवचन

सुना और सबने एक साथ संघ में प्रवेश लिया। इसके कारण अपने आरंभिक काल में ही संघ शीघ्रता से विस्तृत हो गया और इन तीनों साधुओं के विख्यात होने के कारण संघ की भी ख्याति बढ़ी। इस ख्याति से प्रभावित होकर एक राजा ने भी बौद्ध-धर्म स्वीकार किया। फलतः उसके सारे राज्य में बौद्ध धर्म शीघ्रता से फैला।

बौद्ध धर्म स्वीकार करने वाले ये राजा, मगध के राजा बिंब-सार थे। इन्होंने गौतम को अपना आधा राज्य देकर संन्यासी जीवन से विरत करने का प्रयत्न किया था। भ्रमणशील रहते हुए बुद्ध सारे भिक्षुओं के साथ मगध की राजधानी राजगृह पहुंचे। जब राजा बिंबसार ने उनके आगमन का समाचार सुना तो अपने राज्य के अधिकारियों के साथ उनसे मिलने पहुंचे। बिंबसार को यह देखकर बड़ा आश्चर्य हुआ कि अरुवेला के कस्सप ने भी बुद्ध का शिष्यत्व स्वीकार कर लिया है। बिंबसार के साथ आये ब्राह्मण तो भयभीत हो गये कि बौद्ध धर्म चार वर्गों में विभाजित उनके धर्म का नाश कर देगा। बुद्ध ने किसी प्रकार भी प्रभावित हुए बिना अपना उपदेश शांति-पूर्वक इन शब्दों में उन्हें दिया, "आप दुःखी क्यों हैं, क्योंकि आप कामना, इच्छाओं के वशीभूत हैं। आपकी कामना स्वयं में एक प्यास बन गयी है। कामना की पूर्ति हो जाने पर भी प्यास बुझती नहीं है, वह बनी रहती है। अतः सोचना होगा कि सुख की राह क्या है? जिस प्रकार अग्नि में ईंधन न डालने पर वह बुझ जाती है उसी प्रकार यदि कामना का ईंधन न डाला जाये तो दुःख रूपी आग अपने आप बुझ जायेगी। यदि आप स्वार्थपूर्ण आशाओं और इच्छाओं पर विजय प्राप्त कर लें तो आपको सच्चे सुख के दर्शन होंगे।"

बुद्ध ने जब प्रवचन समाप्त कर लिया तो बिंबसार ने अपने सेवकों सहित अपने को बुद्ध के उपासक के रूप में ग्रहण किये जाने की उनसे प्रार्थना की। उन्होंने बुद्ध और संघ को राजमहल में निमंत्रित करके उन्हें अपने हाथों से भोजन कराया और आनंदवन तथा वेणु वन संघ को दान में दे दिया।

बुद्ध वर्षाकाल में अपनी किसी पसन्द की जगह में एकांतवास करते थे और ध्यान करते थे। ऐसा पहला एकांतवास उन्होंने अपने पांच शिष्यों के साथ पहले उपदेश के बाद मृगदाय वन में किया था। सातवां एकांतवास उन्होंने बिंबसार के राज्य में किया। यहां उन्होंने दो नये शिष्यों को दीक्षित किया, जो आगे चलकर उनके प्रधान शिष्य बने।

राजगृह के निकट उपतिष्य और कोलित नाम के दो गांव थे। दोनों गांवों के नायकों का कुलनाम भी यही था। दोनों के ही कुटुम्बियों में आपस में बड़ा प्रेम था। उपतिष्य की पत्नी रूप-सारि ने एक पुंत्र को जन्म दिया इधर कोलित की पत्नी मोग्गली ने भी एक पुत्र को जन्म दिया। उपतिष्य के पुत्र का नाम सारि-पुत्र रखा गया और कोलित के पुत्र का नाम मौद्‌गल्यायन।

बचपन में ही दोनों में मित्रता हो गयी और जब दोनों बड़े हुये तो दोनों का नाटक के प्रति लगाव हो गया। वे नाटक देखते और सोचते कि जो उन्हें मंच पर दिखाई दे रहा है, जीवन का अर्थ उससे कुछ अधिक है। एक रात को जब वे शैल उत्सव नाम का नाटक देख रहे थे तो उन्होंने जीवन का सही अर्थ पाने का निश्चय किया और घर छोड़ दिया। वे पहले संजय नाम के गुरु के पास गये। वे राजगृह के पास ही रहते थे। पर इन दोनों युवकों को उनसे कोई संतोष नहीं मिला। तब उन्होंने स्वयं सत्य की खोज में चिंतन करने और ध्यान करने

की प्रतिज्ञा की और यह निश्चय किया कि जिसे सत्य के दर्शन पहले होंगे, वह दूसरे को अपना अनुभव तुरंत बतायेगा ।

एक दिन जब सारिपुत्र उपतिष्य राजगृह की सड़क पर घूम रहे थे तो उन्होंने एक भिक्षु को हाथ में भिक्षापात्र लिये घर-घर भिक्षा मांगते देखा। उन्हें लगा कि यह साधारण संन्यासी नहीं है। जब वह उनके निकट पहुंचा तो उन्हें संन्यासी के मुख पर गहरे जलाशय-सी शांति दिखाई दी । उन्हें लगा कि जिस प्रश्न का उत्तर हम ढूंढ़ रहे हैं, उसका उत्तर इसे या इसके गुरु को मिल गया है । जब भिक्षु भिक्षाटन कर चुका तो सारिपुत्र उसके पास गये और बोले, "मैं आपकी शांति और सौम्यता पर मुग्ध हूं। कृपया मुझे अपने गुरु का नाम बतायें ।"

भिक्षु कोई अन्य नहीं, बुद्ध के प्रथम पांच शिष्यों में से अस्सजि थे । उन्होंने अपने गुरु का नाम बताया और उनके कुछ उपदेश भी सारिपुत्र को सुनाये, जिन्हें सुनकर वे बहुत प्रभावित हुए और कोलित को साथ लेकर बुद्ध के दर्शनार्थ गये और उनसे दीक्षित हो संघ में सम्मिलित हो गये । आगे चलकर इन दोनों को बुद्ध के प्रधान शिष्यों में गिना गया ।

बिंबसार का अनुसरण कर अनेक धनाढ्यों ने अपने वन-उद्यान संघ को व्यवहार के लिए दे दिए थे । शीघ्र ही एक धनिक व्यापारी ने बुद्ध से आज्ञा लेकर बिंबसार के दिए वेणु- वन में भिक्षुओं के वर्षावास के लिए गृह निर्माण कराकर संघ को अपने घर भोजन करने के लिए निमंत्रित किया और वह सारी सम्पत्ति संघ को दान कर दी ।

जिस दिन संघ व्यापारी के यहां भोजन के लिए निमंत्रित थो, उसके एक दिन पहले व्यापारी की बहन का पति अनाथपिंडक

व्यापारी से मिलने आया। उसने घर में बड़ी चहल-पहल देखी। रसोइये भोजन बनाने में तल्लीन थे, नौकर इधर-उधर सामान ले जा रहे थे और उसकी तरफ कोई ध्यान नहीं दे रहा था। वह सोचने लगा, पहले तो मेरा संबंधी सब काम छोड़ कर मुझसे मिलता था। आज वह कहां है? क्या इस घर में कोई विवाह होने वाला है या राजा बिंबसार को निमंत्रित किया गया है?

व्यापारी हाथ के काम से निवृत्त होकर अनाथपिंडक से मिला और जो तैयारी हो रही थी, उसका कारण बताया। यह सब सुनकर अनाथपिंडक के मन में बुद्ध के दर्शन की उत्सुकता जागी। दूसरे दिन प्रातः ही वह वेणु-वन में गया और उनके उपदेश से प्रभावित होकर उनका उपासक बन गया।

अनाथपिंडक श्रावस्ती का निवासी था। उसने अगली वर्षा में वर्षावास के लिए संघ को निमंत्रित किया। बुद्ध ने उसकी प्रार्थना स्वीकार की। घर जाकर अनाथपिंडक ऐसी जगह की तलाश करने लगा, जो संघ के वर्षावास के अनुकूल हो। उसे राजकुमार जेत का वन पसन्द आया। बेचने के लिए पूछने पर वन का जेत ने बहुत अधिक मूल्य मांगा। उसने कहा, "वन की सारी जमीन पर सोने की मुहरें बिछा दो, मुहरें मैं ले लूंगा और वन तुम्हारा हो जायेगा।" अनाथपिंडक ने बैलगाड़ियों पर भर-भर कर मुहरें मंगवायीं और वन की जमीन पर बिछाने लगा। थोड़ी ही जमीन मुहरों से खाली रह गयी। जेत ने समझ लिया कि यह साधारण खरीदारी नहीं है। उसने कहा, "बची जमीन पर मुहरें बिछवाने की जरूरत नहीं है। इसे मैं स्वयं संघ को दान में देता हूं।" और वहां उसने विहार का मुख्य द्वार बनवा दिया। शेष पर अनाथपिंडक ने संघ के लिए विहार बनवाया और वहां संघ के लिए आवश्यक सामग्री एकत्र की। यह विहार जेतवन

के नाम से प्रसिद्ध हुआ। यहां रहकर भगवान बुद्ध ने अपने विशेष कार्य किये।

बुद्ध से हर वर्ण और हर परिस्थिति से आये लोगों ने दीक्षा ली। इनमें उपाली का दीक्षित होना विशेष महत्वपूर्ण है। उपाली भगवान् महावीर का विशेष शिष्य था, जो उस समय उत्तर भारत में भ्रमणशील रहकर उनके चलाये जैन धर्म का प्रचार कर रहा था।

बुद्ध जब नालंदा के निकट प्रवचन कर रहे थे, तब उसने उनके प्रवचन सुने और प्रभावित होकर बौद्ध धर्म में दीक्षित होने की प्रार्थना बुद्ध से की। बुद्ध ने कहा, "उपाली, अपने निर्णय पर पुनर्विचार करो। तुम्हारे जैसे विशिष्ट व्यक्ति के लिए जल्दी में कोई निर्णय लेना उचित नहीं है।"

उपाली को बुद्ध की बात सुनकर बड़ा आश्चर्य हुआ कि उस जैसे आदमी को बुद्ध छोड़ रहे हैं। अंततः बुद्ध के कथन ने उसे अधिक प्रभावित किया और उसने कहा, "यदि मैं किसी अन्य संप्रदाय में दीक्षित होना चाहता तो इस खुशी में कि उपाली जैसा विशिष्ट व्यक्ति उनके संप्रदाय में आ रहा है, लोग मेरा जलूस निकालते, और आप मुझे अपने निर्णय पर पुनर्विचार का समय दे रहे हैं।" उसने बुद्ध को उनके स्पष्ट विचारों के लिए धन्यवाद दिया और दीक्षित होकर संघ में प्रवेश लिया।

पुन्न के दीक्षित होने का भी विशेष महत्व है। पुन्न सनापरंत प्रदेश का रहने वाला था। यह प्रदेश आज के उत्तरी महाराष्ट्र और दक्षिणी गुजरात का भू-भाग रहा होगा। आज की बंबई के उत्तर की ओर 'सुप्पारक पत्तन' इस प्रदेश का प्रमुख बंदरगाह था, जिसके अवशेष 'नल्ला सुपारा' नामक गांव के समीप मिले हैं। पुन्न इसी सुप्पारक बंदरगाह का रहने वाला

था। बुद्ध जेतवन में ठहरे हुए थे। वह व्यापार के सिलसिले में श्रावस्ती आया था। काम समाप्त कर संध्या समय जब वह फुर्सत में था तो उसे ज्ञात हुआ कि लोग बुद्ध का प्रवचन सुनने के लिए जा रहे हैं। उसकी उत्सुकता जागी और वह भी उनके साथ चल पड़ा। पहले ही उपदेश का उस पर ऐसा असर हुआ कि उसने अपने संबंधी को, जो व्यापार में उसका साझेदार था, पास का सारा धन और सामान देकर बुद्ध से दीक्षा ले ली। आगे चलकर बौद्ध धर्म के प्रचार में उसने बड़ा श्रम किया।

पीछे बहुत अधिक तप करने के बाद पुन्न ने अनुभव किया कि अब उसे अपने देश जाना चाहिए और वहां बुद्ध के उपदेशों का प्रचार करना चाहिए। इसके लिए उसने बुद्ध से आज्ञा चाही। बुद्ध ने तुरन्त आज्ञा नहीं दी। उसकी परीक्षा के लिए उन्होंने उससे कई प्रश्न किये।

बुद्ध बोले, "पुन्न" सूनापरंत में तो जंगली खूंखार जातियां रहती हैं। वहां के लोग निर्दय और कठोर स्वभाव के होते हैं। वे आएदिन लोगों को गालियां देते हैं और तरह-तरह से तंग करते हैं। यदि उन्होंने तुम्हें गालियां देना शुरू किया और तंग 'किया तो तुम कैसा अनुभव करोगे?"

पुन्न ने कहा, "मैं अनुभव करूंगा कि सूनापरंत के लोग बड़े भले और रहमदिल हैं, कम-से-कम वे न मुझे मार रहे हैं, न मुझ पर धूल डाल रहे हैं!"

बुद्ध बोले, "यदि उन्होंने तुम पर धूल डाली और तुम्हें मारा, तब तुम क्या अनुभव करोगे।"

पुन्न ने कहा, "मैं अनुभव करूंगा कि ये भले आदमी हैं, कम-से-कम मुझे डंडे या अस्त्र से तो नहीं मार रहे हैं।"

बुद्ध ने कहा, "यदि उन्होंने तुमपर डंडे या अस्त्र से प्रहार किया तो?"

पुन्न ने उत्तर दिया, "तो मैं अनुभव करूंगा कि ये लोग भले हैं, कम-से-कम मेरे प्राण तो नहीं ले रहे हैं।"

बुद्ध बोले, "पर पुन्न, मान लो कि उन्होंने तुम्हारे प्राण ही ले लिये तो?"

पुन्न ने कहा, "तब भी मैं उन्हें भला ही मानूंगा, । अनुभव करूंगा कि ये मुझे इस सड़े शरीर से मुक्त कर रहे हैं। मैं उन्हें उनकी सेवाओं के लिए धन्यवाद दूंगा।"

पुन्न के उत्तर सुनकर बुद्ध ने पुन्न की बात मान ली और उसे इन स्नेहसिक्त शब्दों के साथ विदा किया, "पुन्न, तुम अति विनीत हो और तुम्हारी सहनशक्ति अपार है। जाओ और सूनापरंत के लोगों को उस मुक्ति का मार्ग सिखाओ, जिस मुक्ति को तुमने प्राप्त कर लिया है।"

कृतज्ञता-पूर्वक पुन्न ने बुद्ध से बिदा ली और सूनापरंत के लिए रवाना हो गया। वहां उसके उपदेश सुनकर उसके पहले वर्षावास के पूर्व उसके शिष्यों की संख्या ५०० हो गयी।

इन कुछ धनाढ्यों के विपरीत ऐसे बहुत से लोगों ने संघ में प्रवेश लिया, जो गरीब और हल्की जाति के थे। कुछ अछूत कहे जाने वाले लोगों ने भी संघ में प्रवेश पाया। इनसे अधिक गरीब और सताया हुआ और कौन हो सकता था, इन्हें अति नीच माना जाता था। ये शहर या गांव के बाहर झोंपड़ियों में रहते थे और मैला उठाना इनका काम था। इन्हें सब धर्मों की छाया से भी दूर रहना पड़ता था। ये ब्राह्मण धर्म की उपज थे,

जिसमें माना जाता था कि आदमी अपने पूर्व जन्म के कर्म के अनुसार किसी जाति में जन्म लेता है। हर व्यक्ति को अपनी जाति के बंधन में रहकर अपने कार्य करने चाहिए, पर अछूतों को किसी जाति के अंतर्गत माना ही नहीं जाता था। उनका काम था सड़क और नालियां साफ करना, पशु के मुर्दा शरीर को उठाना और मैला फेंकना। आज भी ऐसे ब्राह्मण मिल जायंगे, जिनपर किसी अछूत की छाया पड़ जाये तो अपने को अपवित्र हुआ मानेंगे।

पर बौद्ध धर्म में जाति का कोई अर्थ नहीं है। आरंभ से ही यह सार्वभौम रहा। बुद्ध ने भी ब्राह्मण धर्म की तरह कर्म और पुनर्जन्म को माना, पर उन्होंने इसे जाति से संबंधित नहीं किया। इसे उस समय के ब्राह्मणों ने नापसंद किया। उन्हें लगा कि बुद्ध उनके विचारों का विध्वंसक है। इस संबंध में नीचे की घटना यथेष्ट प्रकाश डालती है।

जब बुद्ध श्रावस्ती में विहार कर रहे थे, उनके एक विशिष्ट शिष्य आनंद, जो उनकी देखभाल भी करते थे, नित्य वस्ती में भिक्षा के लिए जाया करते थे। एक दिन भिक्षाटन के पश्चात् जब वे संघ की ओर लौट रहे थे, उन्होंने एक लड़की को कुएं से पानी भरकर लाते देखा और उससे पानी पिलाये जाने की प्रार्थना की। लड़की अछूत जाति की थी। अछूत का किसी को पानी पिलाना उसकी जाति लेना था। अतः लड़की ने उन्हें अपनी जाति बताकर पानी देने से इनकार कर दिया। इस पर आंनद ने कहा, "बहन मैं तुम्हारी जाति या तुम्हारे परिवार के बारे में नहीं पूछ रहा हूं। मुझसे जाति का कोई संबंध नहीं है। मैं केवल यही कहता हूं यदि तुम्हारे पास पानी है तो, मुझे थोड़ा-सा पीने को दो। आनंद के ये वचन सुनकर लड़की ने

जिसका नाम प्रकृति था, आनंद को जल दिया और उनकी शालीनता पर मुग्ध होकर उन्हें अपना दिल दे बैठी और उसने उनसे विवाह करने के अनेक प्रयत्न किये। प्रकृति अपने राग से मुक्त नहीं हो पायी तो बुद्ध ने उसे बुलवाया और सहानुभूति-पूर्वक उसे तबतक उपदेश देते रहे जबतक आनंद-संबंधी विचार उसके दिमाग से निकल नहीं गए। फिर स्वयं उसने बुद्ध से प्रव्रज्या ली और स्त्रियों के लिए बनाये गए संघ में शामिल हो गई। कहा जाता है कि उसने बुद्ध के उपदेशों को गहराई से समझा और बुद्ध की विशिष्ट अनुगामिनी बनी।

बुद्ध द्वारा प्रकृति को दीक्षित किये जाने पर ब्राह्मण तथा उच्च वर्ग के लोग बहुत भयभीत हुए और उन्होंने राजा प्रसेनजित से इसकी शिकायत की। राजा प्रसेनजित अनेक ब्राह्मणों और क्षत्रियों तथा अन्य जनों के साथ बुद्ध के पास गए और उनसे उनके इस कार्य का कारण जानना चाहा।

बुद्ध ने उन सबको त्रिशंकु की कथा सुनाई। त्रिशंकु एक अछूत जाति का मुखिया था। उसके पुत्र का नाम शार्दूलकरण था। वह विद्वान और प्रशिक्षित था। उसे अपने मां-बाप पर अभि-मान था और वह उच्च अभिलाषी था। उसके पिता ने उसका विवाह पुष्करासरि नाम के एक विशिष्ट ब्राह्मण की कन्या से करने का प्रयत्न किया। ब्राह्मण ने उसका प्रस्ताव अस्वीकार कर दिया तो त्रिशंकु ने उससे शास्त्रार्थ किया। उसने कहा, "मनुष्य तो सभी मनुष्य हैं। उनमें घोड़े, गधे, गाय, हिरन की तरह अन्तर कहां है? अतः यह जाति-प्रथा कैसी? उसने यह भी साबित कर दिया कि पूर्व कर्म के अनुसार किसी जाति में जन्म लेने का सिद्धान्त भी गलत है। पुष्करासरि उसके तर्कों से इतना प्रभावित हुआ कि उसने अपनी कन्या का विवाह त्रिशंकु के पुत्र शार्दूलकरण से कर दिया।

यह कथा सुनकर श्रावस्ती के समझदार ब्राह्मणों की समझ में बात आ गई और उन्होंने बुद्ध का विरोध बंद कर दिया।

सुनीत नाम के एक अछूत की कहानी भी प्रकृति की कहानी जैसी ही है। सुनीत का काम सड़क बुहारना था। इसके लिए वह इतनी ही तनख्वा पाता कि किसी तरह जी सके। उसका कोई घर भी नहीं था। अतः वह सड़क के किनारे सो जाता और मार के भय से सवर्णों को अपनी छाया से भी बचाता रहता।

एक दिन जब बुद्ध अपने अनेक शिष्यों सहित एक सड़क से जा रहे थे तो सुनीत उसी सड़क को बुहार रहा था। बुद्ध को आता देखकर छिपने को कोई जगह न पाकर वह एक दीवार से सटकर खड़ा हो गया और हाथ जोड़ लिये। सुनीत की इस हीन भावना को देखकर बुद्ध आश्चर्यचकित रह गए और सुनीत के पास जाकर मधुर वाणी में पूछा, "तुम अपना काम छोड़ कर मेरे साथ रहोगे?"

"महाराज! आजतक तो किसी ने मुझसे इतनी मधुर वाणी में बात नहीं की। जिसने भी हुआ, हुक्म चलाया। मुझ-जैसे गिरे हुए, गंदे भंगी को आप शरण में ले सकें तो मैं आपके साथ आने को तैयार हूं।"

बुद्ध ने उसे उसी समय वहीं दीक्षा दी और संघ में प्रवेश दिया। सुनीत निरक्षर था, पर उसने संघ में रहकर अपने को प्रशिक्षित किया और संघ के बड़े-बूढ़े सदस्यों से सम्मानित हुआ।

बुद्ध की ख्याति उनके पिता शुद्धोधन ने भी सुनी। उस समय बुद्ध राजगृह में ठहरे हुए थे। उन्होंने बुद्ध को कपिलवस्तु आकर अपने प्रवचनों का लाभ कपिलवस्तु के लोगों को देने के लिए एक व्यक्ति द्वारा निमन्त्रित किया। वह बुद्ध के पास गया, पर

इसके पहले कि वह बुद्ध से कुछ कहे, बुद्ध ने उसे अपना उपदेश सुनाना शुरू किया। वह भूल ही गया कि वहाँ क्या करने आया था और उसने बुद्ध से प्रव्रज्ज्या ले ली और संघ की शरण चला गया। उसके न लौटने पर शुद्धोधन ने दूसरे आदमी को भेंजा उसकी भी यही दशा हुई तो तीसरा आदमी भेजा गया। इस प्रकार नौ आदमी भेजे गए और वे लापता हो गए तो शुद्धोधन ने बुद्ध के वचपन के साथी कालुदाई को भेजा। उसकी बात बुद्ध ने सुनी और कपिलवस्तु आकर उनके लिए बनाये गए वटवृक्ष विहार में ठहरे। कपिलवस्तु वे सात वर्ष बाद लौटे थे। पर उन्होंने देखा कि लोग उनका सम्मान, जो वे हैं, उसके लिए कम और वे कपिलवस्तु के हैं, इसलिए अधिक करते हैं।

एक दिन जब बुद्ध भिक्षाटन के लिए निकले तो उनके पिता स्वयं उनके पास गए और बोले, "क्या तुम्हें महल में भोजन नहीं मिल सकता ? क्या जहां तुम सजधज के साथ निकलते थे, वहां तुम्हारा भिक्षा मांगना उचित है ? इस प्रकार मुझको अपमानित क्यों कर रहे हो ?"

बुद्ध बोले, "मेरा आपको अपमानित करने का कोई इरादा नहीं है। भिक्षाटन तो हमारी परम्परा है।"

शुद्धोधन ने कहा, "हमारी परम्परा कैसी ? हमारे कुटुम्ब में कभी किसी ने भीख नहीं मांगी।"

बुद्ध ने उत्तर दिया, "महाराज ! निश्चित रूप से आपके राज-परिवार के किसी सदस्य ने कभी भिक्षाटन नहीं किया। यह परम्परा संन्यासियों की है। वे भिक्षाटन द्वारा ही देह-धर्म निभाते हैं।"

बुद्ध बहुत विनम्र प्रकृति के व्यक्ति थे। बार-बार के आग्रह पर वे अपने पिता की बात मान गए और महल में ही भोजन

लेना निश्चित किया और सोचा कि वहीं महल में ही वे अपने पिता को धर्म का मर्म बतायेंगे। वे इस कार्य में सफल भी हुए। उनका प्रवचन सुनकर शुद्धोधन बुद्ध के, अर्थात् अपने ही पुत्र के, उपासक बन गये।

कपिलवस्तु के लोगों को वे कपिलवस्तु के हैं, यही न समझते रहें, उनके उपदेशों पर भी ध्यान दें, यह समझाने में बुद्ध को थोड़ी कठिनाई हुई। पर कपिलवस्तु के कारण संघ सुदृढ़ बना। राज-दरबार के कितने ही व्यक्ति और कुछ उनके सम्बन्धी भी वहां उनके प्रभाव में आये।

इस आशा में कि शायद सिद्धार्थ लौटें, शुद्धोधन ने अपनी दूसरी पत्नी प्रजापति के पुत्र नंद को उसके पैंतीस वर्ष के हो जाने पर भी राज्य का उत्तराधिकारी घोषित नहीं किया था। नंद के लिए उन्होंने महल बनवा दिया था और जन-कल्याणी नाम की युवती से उसका विवाह भी निश्चित किया था। बाद में उन्होंने सिद्धार्थ का लौटना असम्भव जानकर इस आशा से कि उसे बुद्ध का आशीर्वाद मिल जाये, नंद का विवाह तुरन्त करना निश्चित किया। बुद्ध के कपिलवस्तु आगमन के तीसरे दिन नंद का विवाह हुआ और इस अवसर पर बुद्ध भी पधारे। विवाह के बाद जब वे चलने को हुए तो उन्होंने अपना चीवर और भिक्षा-पात्र नंद को दे दिया। नंद उन्हें जाता देख उनका भिक्षा-पात्र और चीवर विहार तक पहुंचाने के लिए उनके पीछे-पीछे चला। जन-कल्याणी ने उसको बुद्ध को पहुंचाने जाता देख, नववधू की उत्सुकतावश, उससे शीघ्र लौटने की प्रार्थना की।

विहार में पहुंचकर नंद के बुद्ध को उनका चीवर और भिक्षा-पात्र लौटाने पर उसको धन्यवाद देना तो दूर, बुद्ध ने उससे सीधा-सा प्रश्न किया कि क्या वह भिक्षु बनेगा? उसकी बुद्ध के

प्रति ऐसी श्रद्धा थी कि वह इनकार नहीं कर सका। अब बुद्ध ने समय नहीं गंवाया और उपतिष्य को बुलाकर नंद को तुरन्त दीक्षित करने की आज्ञा दी।

जिसने विवाह के दिन ही संसार त्याग दिया हो, वह आसानी से संन्यासी के अनुरूप अपने जीवन को नहीं बना सकता। नंद के मानस में उसकी सुन्दर पत्नी नाचती रही। वह अपने साथियों से कहता, "उसका विहार में मन नहीं लग रहा है, उसे घर याद आ रहा है।"

बुद्ध को नंद की अप्रसन्नता की बात ज्ञात हुई तो वह स्वयं उसकी देखभाल करने लगे। उसे उन्होंने निर्लिप्त बना दिया और नंद की सदा बनी रहने वाली पत्नी की चाह उसके दिमाग से निकल गयी। धीरे-धीरे उसका जीवन दूसरे भिक्षुओं के लिए उदाहरण-योग्य बन गया।

बुद्ध के कपिलवस्तु रहते उनके परिवार का जो दूसरा प्रख्यात व्यक्ति भिक्षु बना, वह बुद्ध के स्वयं का पुत्र राहुल था, जिसने उनके संबोधि की खोज में निकलते समय जन्म लिया था। उसका पालन उसकी माता यशोधरा और शुद्धोधन ने किया था। बुद्ध के घर छोड़ने पर उसे भी यशोधरा और शुद्धोधन के समान ही दुःख हुआ। अब जब बुद्ध वापस कपिलवस्तु आये तो यशोधरा ने राहुल के द्वारा उनसे मिलने की कोशिश की। उसने राहुल को सुन्दर वस्त्रों में सुसज्जित किया और जहां बुद्ध भोजन कर रहे थे, वहां राहुल को ले गयी और इशारा करके पूछा, "बेटे, क्या तुम उन्हें जानते हो?" बुद्ध को आए आज सात दिन हो गए थे। राहुल ने उत्तर दिया, "हां, माँ, वे बुद्ध हैं।"

यह सुनकर यशोधरा की आंखें भर आयीं। वे बोली, "वह साधु पुरुष, जिसके शरीर से सुनहरी आभा निकल रही है और

जिन्हें अनेक भिक्षु घेरे हुए हैं, वही तुम्हारे पिता हैं। पहले वही इस राज्य के अधिकारी थे। उनके पास जाओ और कहो, "पिताजी, मैं राजकुमार हूं। जब मैं राजा बनूंगा तो राजाओं का राजा बनूंगा। मुझे मेरा राज्य दें, क्योंकि जो कुछ पिता का होता है, वही पुत्र को मिलता है।"

राहुल अपनी माता की आज्ञानुसार बुद्ध के निकट गया और बोला, "महाश्रमण, आपकी छाया बहुत सुखद है।"

तबतक बुद्ध भोजन समाप्त कर चुके थे। वे उठे और चलने को उद्यत हुए। राहुल उनके पीछे-पीछे चला और उसकी मां ने उसे जो सिखलाया था, वह कहता गया। बुद्ध ने न कोई उत्तर दिया, न बच्चे को अपने पीछे चलने से विरत किया। पर जब वे चलते जा रहे थे तो सोच रहे थे, "राहुल को अपने पिता का धन चाहिए, पर धन तो दुःख का कारण है। मैं उसे बहुत ऊंचा धन दूंगा, जो मुझे बोधिवृक्ष की छाया में मिला है। इस प्रकार उसे बढ़िया उत्तराधिकार प्राप्त कराऊंगा।"

जब वे विहार में पहुंचे तो बुद्ध ने उपतिष्य से कहा कि वह राहुल को तुरन्त प्रव्रज्जित करे।

शुद्धोधन को राहुल के प्रव्रज्जित होने का समाचार मिला तो वे बड़े दुःखी हुए। वे बुद्ध के निकट गए और आदरपूर्वक, पर दृढ़ता से कहा कि वे आगे से बिना माता-पिता की आज्ञा के किसी भी बच्चे को प्रव्रज्जित न करें। वे बुद्ध से बोले, "जब तुमने गृह-त्याग किया तो मुझे बड़ा दुःख हुआ। जब नंद ने भी घर छोड़ दिया तो इस दुःख से मेरी छाती फट गई और मैंने अपना प्यार राहुल पर केंद्रित किया, पर तुम राहुल को भी ले आये और उसे दीक्षित कर लिया!"

शुद्धोधन की बात से बुद्ध को सहानुभूति हुई और उन्होंने

नियम बना दिया कि बच्चे, उनके माता-पिता की आज्ञा मिलने पर ही दीक्षित किये जायेंगे। आगे तो इस नियम को और भी विस्तृत कर उन्होंने यह भी नियम बनाया कि प्रत्येक भिक्षु बनने के इच्छुक विवाहित पुरुष की पत्नी से भी आज्ञा ली जाय।

राहुल भिक्षु बना रहा। जब वह ग्यारह वर्ष का हुआ तो बुद्ध ने उसे सत्य बोलने की आवश्यकता इस प्रकार समझाई : उन्होंने एक करछा लिया और उसमें थोड़ा-सा पानी डालकर राहुल से पूछा, "तुम्हें पानी की यह बूंद करछे में दिखायी देती है?"

राहुल ने आदर-पूर्वक निवेदन किया, "जी हां।"

बुद्ध बोले, "तो यह जानो कि जो झूठ बोलते हैं, उनमें भी भलमनसाहत होती है, पर बूंद जितनी।" फिर बुद्ध ने करछे को उलट कर कहा, "जब वे झूठ बोलते हैं तब वे इसी खाली करछे की तरह खाली हो जाते हैं।"

बुद्ध ने राहुल को एक दूसरे दृष्टांत द्वारा भी सत्य की प्रतीति कराई।

बोले, "राहुल, एक बढ़िया जाति के हाथी की कल्पना करो। उसकी उम्र जवानी की है। उसके दांत खूब बड़े-बड़े हो गए हैं। उसे युद्ध का अनुभव भी है। युद्ध में वह अपने पैरों, शरीर, सिर, दांतों का ही नहीं, पूंछ और कानों का भी ठीक उपयोग करता है, पर वह सूंड़ पीछे किये रहता है। महावत सोचता है, हाथी अपने सभी अंगों का तो ठीक व्यवहार करता है, पर सूंड़ पीछे किये रहता है। यह राज-सेवा में अपने को पूरा नहीं लगा रहा है। पर जब हाथी अपने शरीर के साथ युद्ध में अपनी सूंड़ का भी व्यवहार शुरू कर देता है तब महावत सोचता है कि हां, अब यह पूरी तरह युद्ध में लगा है। अब इसे

अधिक प्रशिक्षण की आवश्यकता नहीं है। जो पूर्णतया सत्य का अनुसरण नहीं करते, उनकी दशा हाथी की पूर्व दशा की तरह ही है। सत्य का पूर्णतया अनुसरण करना आवश्यक है। अतः राहुल, अपने को प्रशिक्षित करो, सदा सत्य बोलो, मजाक में भी झूठ का सहारा न लो।" बुद्ध ने राहुल को सत्य की पूर्णतया प्रतीति कराने के लिए अपनी बात आगे बढ़ाई और उससे पूछा, "राहुल, दर्पण का उपयोग क्या है?"

वह बोला, "उससे हम अपने को देखते हैं।"

बुद्ध ने कहा, "तुमने ठीक कहा, इसी तरह तुम्हें हमेशा अपने शरीर, अपनी वाणी और विचारों को देखना चाहिए।"

बुद्ध के एक अन्य सम्बन्धी, उनके चाचा के लड़के, आनन्द ने भी संघ की शरण ली। आनन्द हमेशा बुद्ध की सेवा में रहे। बौद्ध-इतिहास में वे अपने मधुर स्वभाव और कार्य के लिए बहुत प्रशंसित हैं।

भ्रमण के बीस वर्षों में बुद्ध का कोई निजी सहायक नहीं रहा। कोई भी भिक्षु उनकी सेवा में लग जाता था। उनकी सेवा के अनेक कार्य, जैसे भिक्षु-पात्र या चीवर उठा लेना आदि करता था। पर कुछ ऐसी घटनाएं घटीं कि बुद्ध के लिए एक सेवक रखना आवश्यक हो गया। एक दिन बुद्ध नागसमाल नाम के भिक्षु के साथ भ्रमण कर रहे थे। जब वे एक दोराहे पर पहुंचे तब कौन-सा रास्ता सही है, इस पर उनमें सहमति नहीं हो सकी। इस पर नागसमाल ने, जो बुद्ध का भिक्षापात्र और चीवर लेकर चल रहा था, उन्हें जमीन पर रख दिया और अपनी पसंद के रास्ते हो लिया। बुद्ध अकेले रह गए। दुर्भाग्यवश नागसमाल को रास्ते में डाकू

मिले, जिन्होंने उसका भिक्षापात्र और चीवर छीन लिया और एक लट्ठ सिर पर जमाया। नागसमाल सिर की चोट और बुद्ध की आज्ञा की अवहेलना का दुःख लिये उनसे फिर आ मिला।

दूसरी बार बुद्ध भिक्षु मगहिया के साथ भ्रमण कर रहे थे। जब वे एक आम के बाग में पहुंचे तो उसने बुद्ध को उनका भिक्षापात्र और चीवर लौटा दिया और बोला, "मैं यहां थोड़ी देर ध्यान करूंगा।" बुद्ध के यह समझाने पर कि यह ध्यान का समय नहीं है, उसने उनकी बात नहीं मानी और ध्यान करने बैठ गया। थोड़ी देर बाद वह बुद्ध के पास लौटा और बोला कि उसका ध्यान नहीं लगा और बुद्ध को छोड़ने पर दुःख प्रकट किया। इस घटना का बुद्ध ने ध्यान के महत्व के संबंध में आवश्यक बातें बताने के लिए उपयोग किया। उन्होंने बताया कि ध्यान के लिए शांति और एकाग्रता की तो आवश्यकता है ही, साथ ही ध्यान के लिए निम्नलिखित बातें भी आवश्यक हैं : १. अध्यात्म के मार्ग पर पके हुए विकसित व्यक्ति का साथ २. ज्ञानेन्द्रियों पर अधिकार ३. कामोन्माद से दूर, सम्यक् वाचा ४. सम्यक् व्यायाम का व्यवहार और ५. प्रथम आर्य सम्यक् की, अर्थात् जीवन दुःखमय है, प्रतीति होनी चाहिए।

इन दोनों घटनाओं से बुद्ध को लगा कि उन्हें अपनी सेवा का भार किसी को सौंपना चाहिए। उस समय उनकी उम्र भी ५५ वर्ष की हो रही थी। अतः उन्होंने जेतवन जाकर अपना सेवक निर्धारित करने की इच्छा प्रकट की। उनके दोनों प्रधान शिष्यों उपतिष्य और कोलित ने अपनी-अपनी सेवाएं प्रदान करने की इच्छा जतलाई, पर बुद्ध ने यह कहकर कि जो कार्य वे कर रहे हैं, वह अधिक महत्वपूर्ण है, उनकी प्रार्थना स्वीकार नहीं की। और भी कई प्रमुख भिक्षुओं ने अपने को आगे किया, पर बुद्ध ने किसी को सेवक के रूप में लेना स्वीकार नहीं किया। उन्होंने

आनन्द को सेवा का कार्य-भार सौंपा। उस समय से लेकर जीवनपर्यन्त वे बुद्ध की सेवा में रत रहे। वे बुद्ध की कोठरी साफ करते, उनकी मालिश करते, उनका भिक्षापात्र और चीवर धोते तथा हर समय उनके निकट रहते कि जव भी वह चाहें, उनकी सेवा उन्हें प्राप्त हो सके। बुद्ध ने आनन्द के लिए प्रशि-क्षित, बुद्धिमान, सुसंस्कृत, दृढ़ निश्चयी आदि विशेषणों का व्यवहार किया है। आनन्द ने स्त्रियों को संघ में शामिल करने और उनके लिए अलग संघ की व्यवस्था करने की दिशा में बुद्ध को वहुत प्रभावित किया।

आनन्द की बुद्ध के प्रति ऐसी सेवा-भावना थी कि वे सदा उसी में लगे रहते। उनको ध्यान करने का बहुत थोड़ा समय मिलता था। बुद्ध के जीवन में उन्हें संबोधि की प्राप्ति नहीं हुई। उनके शरीरांत के वाद ही वे ध्यान में लगे और संवोधि प्राप्त की। और जब बुद्ध के निर्वाण के वाद उनके उपदेशों को आगे की पीढ़ी के हेतु संग्रह कर कंठस्थ करने के लिए पांच सौ भिक्षु अर्हतों की सभा बैठी तो वे इस सभा में शामिल हुए और उसमें महत्वपूर्ण भूमिका निभाई।

गौतम ने यह अनुभव किया कि जीवन और दुःख साथ-साथ चलते हैं। जीवन है तो दुःख भी रहेगा ही। दुःख से छुटकारा नहीं मिल सकता, पर उससे ऊपर जरूर उठा जा सकता है। इस अनुभव ने ही आरम्भ में उन्हें निर्वाण की राह की खोज के लिए प्रेरित किया। दुःख से ऊपर कैसे उठा जा सकता है, इस की विधि उन्होंने बतलायी। यह कई कहानियों से प्रमाणित होता है, जिनमें किसा गौतमी और सरसों के दाने की कहानी वहुत प्रसिद्ध है।

किसा गौतमी नाम की एक युवती का श्रावस्ती के एक धनाढ्य व्यापारी युवक से विवाह हुआ था। उसके माता-पिता भी अति धनाढ्य थे। किसा गौतमी का एक वर्ष का एक बालक था। वह बीमार पड़ा और इलाज शुरू होने के पहले ही वह मर गया। इस दुःख से किसा गौतमी पागल हो गई और बच्चे को गोद में लिये श्रावस्ती की गलियों में घूमने लगी। जो भी मिलता, उससे बच्चे को जीवित कर देने की प्रार्थना करती। कुछ लोग उसकी बात पर ध्यान न देते, कुछ मुस्कराकर आगे बढ़ जाते। उसकी सहायता कौन कर सकता था? अन्त में उसे एक बुद्धिमान् व्यक्ति मिला। उसने कहा, "किसा गौतमी, तुम्हारे बच्चे को एक ही व्यक्ति जीवित कर सकता है, वह है बुद्ध। इस समय वे जेतवन के विहार में ठहरे हुए हैं।" किसा गौतमी बुद्ध की शरण में गयी और मृत बालक को उनके चरणों के निकट रखकर उनसे अपने दुर्भाग्य की बात कही।

बुद्ध ने किसा गौतमी की बात धीरज से और दयापूर्वक

सुनी और कहा, "बहन, मैं तुम्हारे दुःख का इलाज करूंगा। तुम श्रावस्ती चली जाओ और वहां से किसी ऐसे घर से, जिसमें कभी किसी की मृत्यु न हुई हो, सरसों का एक दाना मांग लाओ।

किसी गौतमी को धीरज वंधा और वह सरसों का दाना लाने चल पड़ी। पहले ही घर में उसने आवाज लगाई, "बुद्ध ने मुझसे ऐसे घर से एक सरसों का दाना मंगवाया है, जिसमें किसी की मृत्यु न हुई हो। मुझे सरसों का एक दाना देने की कृपा करें।"

घर के एक सदस्य ने कहा, "सरसों तो बहुत हैं, तुम ले जाओ बहन, पर इस घर में अनेकों की मृत्यु हो चुकी है।"

वह घर-घर गई और हर घर में उसे यही उत्तर मिला। अब उसकी समझ में आ गया कि हर प्राणी मरता ही है, और यह किसा गौतमी समझ जाये, यही बुद्ध चाहते थे। यह समझ आते ही वह बच्चे को श्मशान-घाट ले गई और शव से मुक्ति पाकर विहार में लौट आयी।

बुद्ध ने पूछा, "सरसों का दाना लायी ?"

गौतमी बोली, "नहीं, और न अब उसकी तलाश करूंगी। जो पाठ आप मुझे पढ़ाना चाहते थे, वह मेरी समझ में आ गया। मेरे दुःख ने मुझे अन्धा बना दिया था। मैं समझ रही थी कि मृत्यु मेरे ही घर पर टूटी है।"

बुद्ध ने पूछा, "फिर तुम्हारे यहां वापस आने का कारण क्या है ?"

गौतमी बोली, "आप मुझे बतायें कि सत्य क्या है ?"

बुद्ध ने कहा, "गौतमी, मनुष्यों का संसार हो या देवताओं का, इसकी हर वस्तु अनित्य है।"

बुद्ध के वचन सुनकर किसा गौतमी ने उनसे दीक्षा ली और वह काल पाकर निर्वाण को प्राप्त हुई।

किसा गौतमी से भी दुर्भाग्य की कठोर कहानी पटाचारा की है। पटाचारा धनवान मां-बाप की बेटी थी। उसे संसार की हवा न लगे, इस विचार से माता-पिता उसे अपने घर के ऊपर की मंजिल के एक कमरे में रखते थे। किसी से उसकी भेंट नहीं होती थी। अतः वह साथ के अभाव में अपने नौकर से ही प्यार कर बैठी। जब वह सोलह वर्ष की हुई तो उसके माता-पिता ने एक धनाढ्य व्यापारी के पुत्र से उसका विवाह निश्चित किया। इस समाचार से दुःखी होकर पटाचारा और उसके प्रेमी ने भाग निकलने की योजना बनायी और जिस दिन उसका विवाह होने वाला था, वह पानी भरने वाले नौकर का भेस बनाकर घर से निकल भागी। शहर के बाहर उसकी प्रतीक्षा करता उसका प्रेमी उसे मिल गया और दूर एक गांव में जाकर उन्होंने विवाह कर लिया। कुछ समय बाद पटाचारा गर्भवती हुई और प्रसव के लिए पीहर जाने की जिद करने लगी। उसका पति उसके माता-पिता के भय के कारण मना करता रहा। अन्त में पटाचारा नहीं मानी और पीहर जाने के लिए घर से निकल पड़ी। उसका पति उसके पीछे-पीछे चलते हुए उससे घर लौटने की प्रार्थना करता रहा। पर हुआ यह कि रास्ते में ही पटाचारा को प्रसव पीड़ा आरम्भ हुई और रास्ते में ही उसने प्रसव किया। अब पीहर जाने का कोई अर्थ नहीं था। अतः बच्चे और पति के साथ वह अपने घर लौट आयी।

दूसरी बार जब वह गर्भवती हुई तो इस बार भी वह अपने पति की इच्छा के विरुद्ध अपने पीहर के लिए रवाना हुई। साथ में उसका पति भी मन मारकर चला। रास्ते में जोर की आंधी आई और तभी पटाचारा को प्रसव पीड़ा भी होने लगी। वह रास्ते में ही बैठ गई और उसका पति छाया के लिए जंगल से पत्ते और लकड़ियां लाने चला गया। दुर्भाग्य से उसे जंगल में सर्प

ने डस लिया और उसकी मृत्यु हो गयी। अब कठिनाइयां और बढ़ीं। पटाचारा के बच्चा हुआ। प्रातः आंधी पानी कम होने पर उसे अपने पति का शव मिला। वह बहुत दुःखी हुई और लाचार नवजात शिशु को गोद में लिये और छोटे बच्चे की अंगुली पकड़े वह अपनी राह चली। चलते-चलते उसे एक नदी मिली, जिसमें बाढ़ आई हुई थी। दोनों बच्चों को साथ ले जाने की उसमें शक्ति नहीं थी। अतः बड़े बच्चे को उसने नदी के किनारे बिठा दिया और छोटे बच्चे को नदी पार कराने लगी। दूसरे किनारे पर पहुंचकर उसने बच्चे को जमीन पर सुलाया ही था कि उस पर एक गीध ने झपट्टा मारा। पटाचारा गीध को भगाने के लिए चिल्लाई। दूसरे किनारे पर बैठे बच्चे ने मां की चिल्लाहट सुनकर समझा कि वह उसे बुला रही है। वह पानी में कूद पड़ा। पटाचारा उसका कूदना देखकर उसे बचाने को झपटी, पर बचा न सकी। वह पानी में बह गया। इधर नवजात शिशु को अकेला पाकर गीध उसे अपने पंजे में दबाकर उड़ गया। पटाचारा के भाग्य में तो अभी और भी दुःख देखना बदा था। वह किसी तरह श्रावस्ती पहुंची तो उत्सुकतावश किसी से उसने अपने माता-पिता के कुशल समाचार जानने चाहे। उसने बताया, "कल के भयंकर तूफान में जिस घर में उसके माता-पिता रहते थे, वह ढह गया और उसमें दोनों दबकर मर गए। वह देखो, दोनों की चिताएं वहां जल रही हैं।"

पटाचारा पति और दो पुत्रों के शोक से दुःखित थी ही, इस हृदय-विदारक घटना को सुनकर उसकी कहीं शरण पाने की आशा भी टूट गयी और अधपागली होकर वहीं जमीन पर लोट-पोट होकर जोर-जोर से रोने लगी। इस दशा में पाकर कुछ लोग उसे जेतवन विहार में ले गए, जहाँ बुद्ध ठहरे थे। बुद्ध ने पटाचारा को इस दशा में देखकर कुछ भिक्षुणियों को उसे
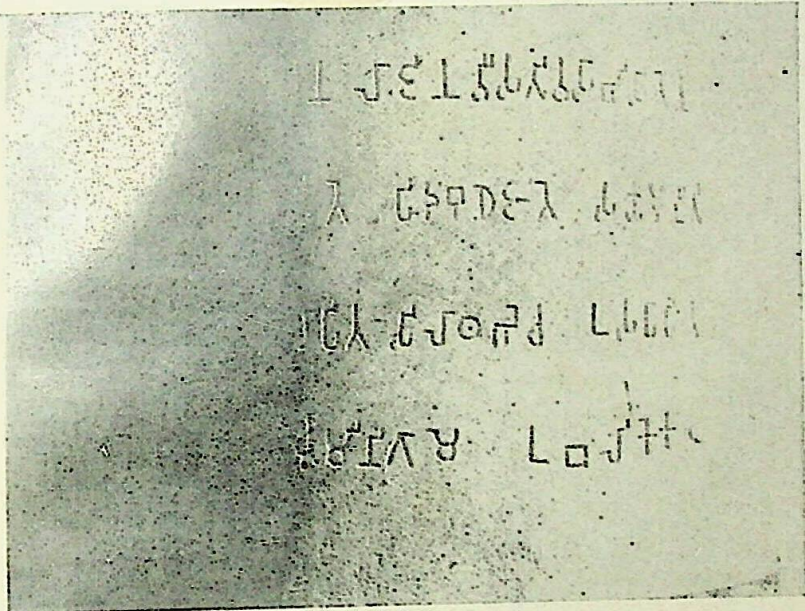
अशोक का शिलालेख
बुद्ध के जन्म-स्थान लुम्बिनी में स्थित

बुद्ध शीर्ष
गांधार शैली

वृहत स्तूप का प्रवेश द्वार, सांची

बौद्ध विहार तथा विश्वविद्यालय, नालन्दा
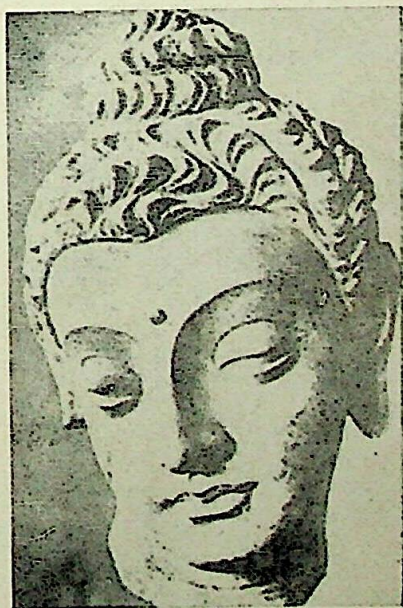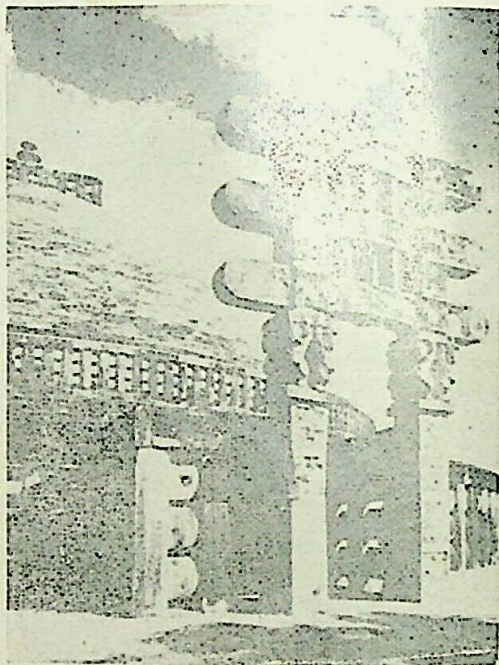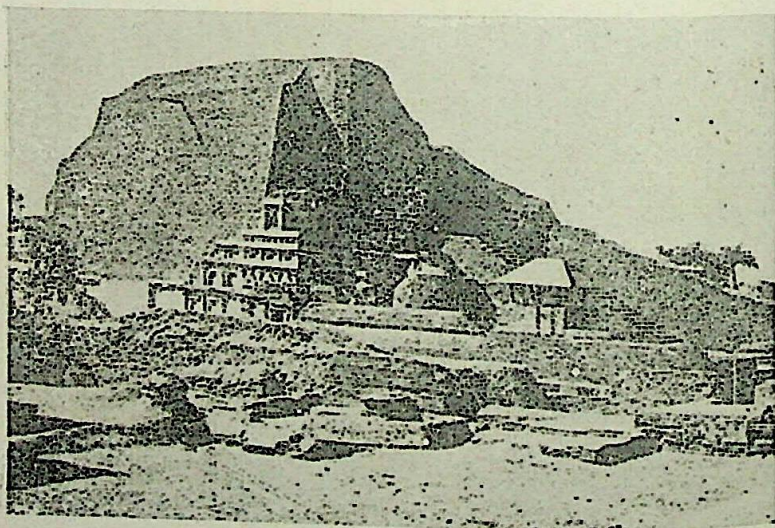
उपदेश-मुद्रा में बुद्ध
सारनाथ, वाराणसी
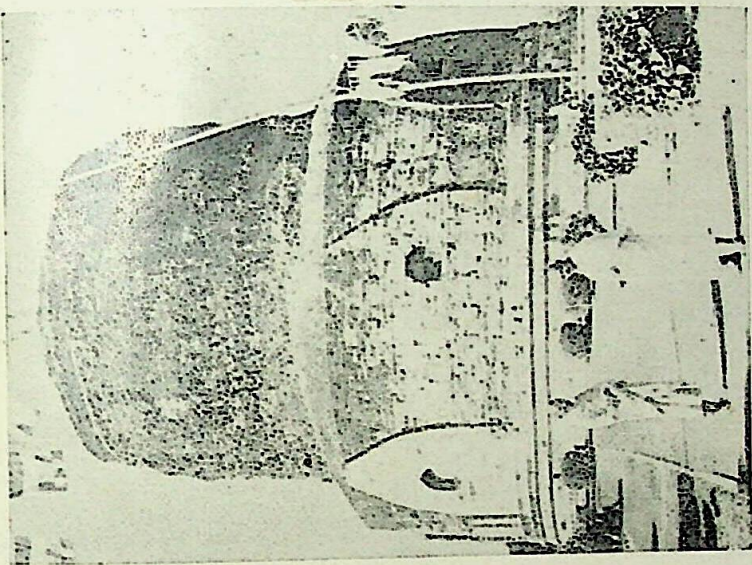
धर्मचक्र स्तूप, सारनाथ
जहां बुद्ध ने प्रथम प्रवचन दिया

महावोधि विहार तथा
वोधि वृक्ष

बुद्धगया व्रतानुष्ठित स्तूप
जहां बुद्ध ने सम्वोधि-प्राप्ति के
पश्चात सात सप्ताह विताये थे
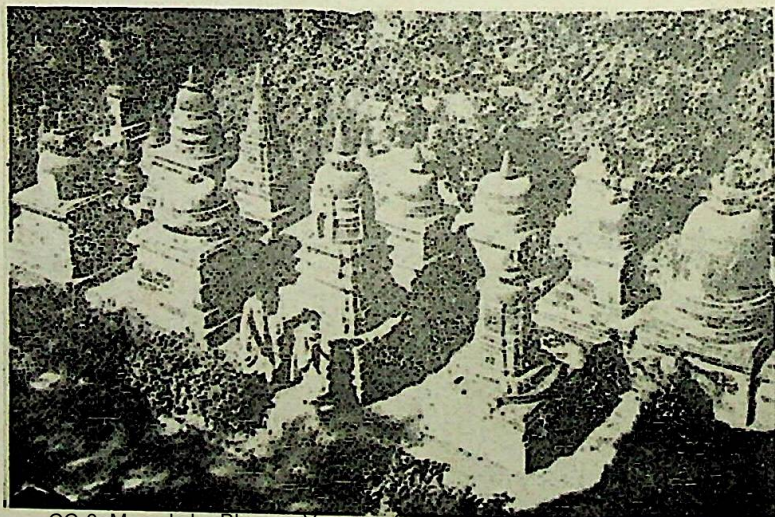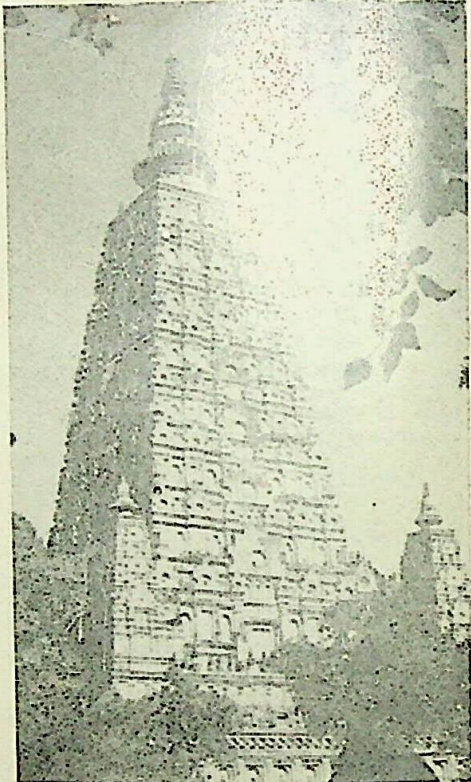
नहलाने-धुलाने, कपड़े पहनाने और भोजन कराने की आज्ञा दी। इसके बाद उसके आने पर बुद्ध ने उससे उसके दुर्भाग्य और दु:खों के सम्वन्ध में वात करना शुरू किया। वैसे भी बुद्ध के उपदेश से उसे शांति मिली। उसने संघ में प्रवेश लिया और कालांतर में उसे संबोधि मिली।

देवदत्त द्वारा आहत किये पक्षी की रक्षा गौतम ने की ही थी। वे वचपन से ही पशु-पक्षियों के प्रति और सबके प्रति दयालु थे। यह दयालुता तो सिक्के का दूसरा पहलू है, जिसके मुख पर लिखा हुआ है कि संसार दु:खमय है। बुद्ध के जीवन में उनकी करुणा के अनेक प्रसंग मिलते हैं।

एक वार जब वे संघ में आनन्द के साथ गए थे तो उन्होंने संघ की एक कोठरी में एक बीमार भिक्षु को देखा। उसे दस्त आ रहे थे। उसे कष्ट तो था ही, साथ ही वह गन्दगी में भी पड़ा था, उसकी ओर कोई देख तक नहीं रहा था।

बुद्ध ने उससे पूछा, "तुम्हारी सेवा अन्य भिक्षु क्यों नहीं कर रहे हैं?"

बीमार भिक्षु ने उत्तर दिया, "क्योंकि मैं किसी की सेवा नहीं करता।"

बुद्ध ने आनन्द को साथ लिया। पानी गरम किया, उसे नहलाकर स्वच्छ किया, स्वच्छ कपड़े पहनाये और उसे स्वच्छ विछौने पर सुलाया। यह सब करके बुद्ध ने वहां उपस्थित सभी भिक्षुओं को बुलाया और उनसे अनुरोध किया कि जब कोई उन्हें कष्ट से पीड़ित और बीमार मिले तो उसकी सेवा अवश्य करें। उन्होंने कहा, "जो बीमार की सेवा करता है, वह मेरी सेवा करता है।"

एक दूसरे अवसर पर उन्हें एक भिक्षु मिला, जिसके शरीर पर खाज के कारण फोड़े हो गए थे और उनमें दुर्गन्ध आ रही था। उसे भिक्षुओं ने संघ के बाहर मैदान में लाकर लिटा दिया था। बुद्ध उसकी सेवा करने लगे। यह देखकर अन्य भिक्षु गरम पानी लाये, उसे स्वच्छ किया और उसकी सेवा करने लगे।

बुद्ध बच्चों को भी क्रूरता से विरत रहने की शिक्षा देते थे। एक बार उन्होंने देखा कि कुछ बच्चे अधसूखे पोखरे की मछलियों को सता रहे हैं। तब उन्होंने उन्हें भी इस कार्य से विमुख किया। वे प्रश्नों द्वारा बच्चों के सद्विचारों को उभारते थे। उन्होंने बच्चों से पहला प्रश्न यही किया कि जिस प्रकार तुम इन मछलियों को सता रहे हो, उसी प्रकार तुम्हें कोई सताये तो तुम्हें कैसा लगेगा ? एक अवसर पर उन्होंने देखा कि बच्चे एक सांप को डंडे से पीट रहे हैं, तो उन्होंने उन्हें ऐसा न करने को कहा। वे यह सब माता-पिता अथवा गुरु के शुभचिंतन की दृष्टि से करते थे।

बुद्ध के उपदेशों का आधार सहज बुद्धि और व्यावहारिकता थी। दूसरे धर्मों में और बौद्ध धर्म में यही अन्तर है। वे संसार छोड़कर काया को कष्ट देने में लग जाते हैं, (यही राह स्वयं बुद्ध ने शुरू में पकड़ी थी), फिर कायाकष्ट उनका आदर्श बन जाता है, वे संसार को छोड़कर कायाकष्ट के संसार में लिप्त हो जाते हैं। इसीलिए बुद्ध ने मध्यम मार्ग की शिक्षा दी। बुद्ध की सहज-बुद्धि के भी कई उदाहरण मिलते हैं।

एक बार बुद्ध और संघ के सभी भिक्षुओं को आलवी नामक स्थान के वासियों ने निमन्त्रित किया। बुद्ध के उपदेश सुनने की एक किसान की भी तीव्र इच्छा हुई, पर जिस दिन बुद्ध का प्रवचन होने वाला था, उसके प्रातः उसका बैल खो गया। बुद्ध

के उपदेश तो वह सुनना चाहता था, पर बैल खोजना भी जरूरी था। वह बैल खोजने निकला और दिन भर खोजता रहा, आखिरकार बैल उसे संध्या के समय मिला। उसने बैल को घर पहुंचाया और बुद्ध के प्रवचन सुनने भागा। दिन भर वह बैल को खोजता रहा था और खाया-पिया कुछ भी नहीं था, पर बुद्ध के प्रवचन सुनने की उसकी इच्छा इतनी तीव्र थी कि वह सीधे बुद्ध के सामने पहुंच गया।

बुद्ध और संघ ने भोजन कर लिया था और धन्यवाद के रूप में अपना प्रवचन आरम्भ करने वाले ही थे कि सामने आये किसान को देखकर ठिठक गए। उसे भूखा-प्यासा और थका देखकर उन्होंने अपने एक शिष्य को उस किसान को आराम से बिठाने और भोजन कराने की आज्ञा दी। उस किसान के भोजन कर लेने के बाद ही उन्होंने अपना प्रवचन आरम्भ किया। किसान ने बुद्ध का उपदेश पूरे मन से सुना।

बुद्ध के कई शिष्यों को बुद्ध का प्रवचन रोक रखना, और सो भी एक गरीब किसान के लिए, अच्छा नहीं लगा। वे आपस में बुद्ध के इस कार्य की आलोचना करने लगे। बुद्ध ने उनकी शिकायत सुनी तो उन्हें बुलाकर उनसे कहा, "यदि मैं अपना उपदेश उस भूखे किसान को सुनाता तो वह कुछ भी न समझ पाता, क्योंकि भूख के क्लेश से बढ़कर दूसरा क्लेश कोई नहीं है।"

बुद्ध ने यह भी स्पष्ट किया कि मध्यम मार्ग का अर्थ भोग-लिप्सा नहीं है। इसके विरुद्ध मध्यम मार्ग का अर्थ है हर प्रकार की लिप्सा और कायाकष्ट की लिप्सा से विरत रहना।

कौशल के राजा प्रसेनजित भोजन के विशेष प्रेमी थे। वे थालीभर भात और साथ में दाल, शाक और चटनियां भी

खाते थे। एक बार वे नाश्ता करते समय ही ऊंघने लगे। पर सबेरे-सबेरे वे लेटना नहीं चाहते थे। अतः निद्रा भगाने के लिए वे टहलने निकले और टहलते-टहलते जेतवन पहुंच गए, जहां बुद्ध ठहरे हुए थे। वे बुद्ध के निकट जाकर धप से बैठ गए, नींद उन्हें तब भी सता रही थी, पर किसी तरह उन्होंने आंखें खोल रखी थीं।

बुद्ध ने उनकी यह दशा देखी तो पूछा, "राज़न, आपकी इस सुस्ती का क्या कारण है? क्या आपको रात में निद्रा नहीं आयी?"

राजा ने बड़ी नम्रता से उत्तर दिया, भन्ते! रात को मैं सोया तो था, पर जब भी मैं कुछ खा लेता हूं, मेरी ऐसी ही दशा हो जाती है।"

बुद्ध ने कहा, "राजन्, आप भोजनाधिक्य के रोग से पीड़ित हैं। अधिक भोजन करके हर समय सोते रहना और भरपेट अनाज खाये हुए सूअर की तरह लोटते रहना मूर्खता है क्योंकि अधिक भोजन करना रोग और कष्ट को जन्म देता है।"

बुद्ध ने आगे कहा, "राजन् संयम रखकर परिमित भोजन करना ही बुंद्धिमानी है। ऐसा भोजन तृप्तिकारक भी होता है। अल्पहारी व्यक्ति धीरे-धीरे बूढ़ा होता है और अनेक शारीरिक पीड़ाओं से बचा रहता है।"

राजा प्रसेनजित ने बुद्ध की शिक्षानुसार चलने की कोशिश की, पर सफल नहीं हुए। तब बुद्ध ने उनके भतीजे राजकुमार सुदर्शन को बुलाया और राजा की सहायता करने का परामर्श दिया। उन्होंने उससे कहा कि राजा उचित मात्रा में भोजन कर लें तो वह उन्हें टोक दें, और ज्यादा न खाने दें, बल्कि परिमित मात्रा में ही उन्हें भोजन परोसा जाय। दुबारा मांगने की

जरूरत ही न हो। राजा ने इस परीक्षण में सहयोग किया। वे सुदर्शन के टोकने के पहले ही भोजन से हाथ खींच लेते। जब भी सुदर्शन को उन्हें चेताना पड़ा, उन्होंने जुर्माने के रूप में एक हजार अशर्फियां दान कीं। धीरे-धीरे उनका भोजन बहुत थोड़ा रह गया। इससे उनका मोटापा एकदम कम हो गया, स्फूर्ति आ गई और उन्होंने जाकर बुद्ध को इन शब्दों में धन्यवाद दिया, "मुझे मेरी प्रसन्नता फिर मिल गई है। अब मैं फिर शिकार पर जाता हूं, जंगली जानवरों और घोड़ों को पकड़ पाता हूं। पहले तो मैं भतीजे से नाराज रहता था, पर अब मैं उससे इतना प्रसन्न हूं कि मैंने अपनी पुत्री उसे ब्याह दी है।"

संतुलित भोजन के विजयी खिलाड़ी राजा प्रसेनजित ने, संतुलित न्याय किसे कहते हैं, यह भी बुद्ध से जान लिया।

एक दिन प्रसेनजित जब बुद्ध से मिलने गए तो उन्हें कुछ भिक्षु रास्ते में जाते दिखाई दिये। वह उनके सम्मान में खड़े हो गए और विनम्रता-पूर्वक प्रणाम किया। जब वे चले गए तो उन्होंने बुद्ध से पूछा, "जो भिक्षु अभी आए थे, उनमें से कोई ऐसा भी है, जिसे सच्चे अर्थों में साधु कहा जा सकता हो?" बुद्ध ने कहा, "कामनाओं से घिरे, धन के मोह में लिपटे, संसारी व्यक्ति के लिए इस तरह का कोई निर्णय देना कठिन है। किसी व्यक्ति के साथ अधिक दिनों तक रहा जाय, तभी उसकी ईमानदारी के सम्बन्ध में कुछ कहा जा सकता है। कठिनाई में फंसे व्यक्ति के ही आंतरिक विचार देखे जा सकते हैं। बहुत दिनों तक व्यवहार रखकर और उनसे बराबर बात करके ही जाना जा सकता है कि वह कितना बुद्धिमान है।"

बुद्ध ने कभी यह नहीं कहा कि आदमी को समझने की उनमें कोई अलौकिक शक्ति है। उनका प्रौढ़ निर्णय अनुभव-जन्य

और आत्मज्ञान पर आधारित होता था। यह संतुलन, जब वह किसी की प्रशंसा करते या आलोचना, स्पष्ट दिखाई देता था।

बुद्ध एक बार कुछ भिक्षुओं के साथ यात्रा कर रहे थे। उनके पीछे सुप्रिय और ब्रह्मदत्त नाम के दो अन्य मार्गी संन्यासी भी चल रहे थे। वे बुद्ध, उनके विहार और उनके संघ के बारे में बात करते जा रहे थे। सुप्रिय का दृष्टिकोण केवल आलोचनात्मक था जब कि ब्रह्मदत्त बुद्ध और उनके धर्म की प्रशंसा-ही-प्रशंसा कर रहा था। रात को भी वे उसी स्थान पर ठहरे, जहां बुद्ध ठहरे थे और रात को भी उनकी आलोचना-प्रत्यालोचना जारी रही, जिसे बुद्ध के साथी भिक्षुओं ने भी सुना। प्रातः संन्यासियों की बातों पर कुछ भिक्षु बिगड़ उठे। उनका बिगड़ना बुद्ध ने सुना तो उन्होंने भिक्षुओं से कहा, "साथियों, मेरी, मेरे सिद्धांतों की अथवा संघ की आलोचना सुनकर आप दुःखी क्यों होते हैं? यह क्रोध और दुःख आपके आत्म-विजय की राह का रोड़ा साबित होगा। लोगों की बात सुनकर यदि आप क्रोधित हो जायंगे तो उनके कथन की प्रामाणिकता की जांच कैसे कर सकेंगे? जब कोई हमारी आलोचना करे तो उसके कथन की जांच कीजिए और उसके कथन में जो अप्रामाणिक मिले, वह उन्हें सकारण बताइए। पर कोई मेरी, मेरे सिद्धांतों की अथवा संघ की प्रशंसा करे, तो उस समय प्रसन्न होने की आवश्यकता नहीं है। केवल जो सही कहा गया है, उसे स्वीकार कीजिए और उन्हें कारण सहित बता दीजिए कि उन्होंने कितना सही कहा है। अधिकांश तो जो मेरी प्रशंसा करते हैं, वह प्रशंसा किसी गंभीर हेतु को लेकर नहीं होती, वह तो केवल ऊपरी छोटी-छोटी बातों को लेकर रह जाती है।"

बुद्ध के इस प्रवचन को समझाने वाली एक कहानी है।

अतुल नामका एक युवक था । वह श्रावस्ती का निवासी था । उसके कई मित्र थे । उन्होंने विहार में जाकर प्रवचन सुनने का निश्चय किया । वे जब विहार में पहुंचे तो रेवत से मिले, उन्हें प्रणाम कर उनके पास बैठ गए और उत्सुकतापूर्वक उनके प्रवचन की प्रतीक्षा करने लगे । रेवत अपने में ही मगन रहते थे । उन्होंने उन युवकों की तरफ कोई ध्यान नहीं दिया और न कोई प्रवचन किया ।

निराश होकर वे सारिपुत्र के पास गए । सारिपुत्र उनको आया देख प्रसन्न हुआ और उन्हें विस्तारपूर्वक बुद्ध धर्म का मर्म समझाया । पर अतुल को उनके विचार सुनकर कोई संतोष नहीं हुआ, उसके कई मित्रों को तो सारिपुत्र का लम्बा प्रवचन उबाऊ लगा ।

अब वे आनन्द के पास गए और उन्होंने बताया कि वे रेवत के पास गए थे, वे तो कुछ बोले ही नहीं और सारिपुत्र बोले तो इतना अधिक बोले कि उनका जी ऊब गया । आनन्द ने उनकी कठिनाई और जरूरत समझकर बुद्ध के विचार सरल भाषा में और संक्षेप में सुनाए । आनन्द से भी वे संतुष्ट नहीं हुए और अपने असंतोष की बात जाकर उन्होंने बुद्ध को बतायी । बुद्ध ने उनसे कहा, "हमेशा यही होता आया है कि आदमी, आदमी की आलोचना करता है, जो न बोले, उसकी आलोचना होती है और जो न थोड़ा बोले और न अधिक, उसकी भी आलोचना होती है । हर आदमी दो काम करता है, या तो वह आलोचना करता है या प्रशंसा । इस पृथ्वी, इस सूर्य, इस चांद की और मेरी भी, इस समय संघ को जो उपदेश दे रहा हूं, उसकी कुछ लोग प्रशंसा करेंगे, और कुछ लोग आलोचना, पर साधारणतया प्रशंसा या आलोचना का कोई अर्थ नहीं होता । हां, जो आपको

और आपसे असंपृक्त रहकर आपकी आलोचना या प्रशंसा करता है, उसका अर्थ अवश्य है।"

बुद्ध स्वयं आलोचनाओं से मुक्त नहीं रहे। बराबर यह प्रश्न उठाया जाता रहा कि आत्मा के सम्बन्ध में बुद्ध के विचार क्या हैं? हिन्दू धर्म मानता है कि आत्मा परमात्मा का अंश है और आत्मा परमात्मा में मिलने के लिए व्याकुल रहती है। क्या बुद्ध अपने से बाहर किसी ईश्वर को मानते हैं?

बुद्ध ऐसे प्रश्नों पर विचार करना समय का अपव्यय समझते थे। उनका कहना था कि संसार दुःखमय है और सही राह पकड़कर इस दुःख से मुक्त होकर संबोधि प्राप्ति की जा सकती है। जब वे सत्य की जानकारी की बात करते हैं तो वह इसी संबोधि-प्राप्ति की बात कहते हैं।

बुद्ध के समय में भी ऐसे लोग थे, जो उनके इस दृष्टिकोण से सन्तुष्ट नहीं थे।

बुद्ध का शिष्य मालुंक्यपुत्र अशांत प्रकृति का व्यक्ति था। तरह-तरह के प्रश्न उसके मानस को झकझोरते रहते थे और ध्यान में वह पूरा मन नहीं लगा पाता था। उसका ख्याल था कि बुद्ध को उसके प्रश्नों का उत्तर देना ही चाहिए। पर जब भी वह अपने प्रश्न बुद्ध से करता, वह उसे टाल देते। अपने प्रश्नों का निश्चित उत्तर न पाकर वह परेशान हो गया और उसने सोचा कि या तो बुद्ध उसके प्रश्नों का उत्तर दें या वह संघ छोड़कर गृहस्थ हो जाय। उसने बुद्ध के पास जाकर अपने वे प्रश्न रखे, जो उसे परेशान कर रहे थे। क्या विश्व नित्य है? क्या यह अनन्त है? आत्मा और शरीर एक है या आत्मा और शरीर अलग-अलग हैं? और साथ में यह भी कहा, "यदि आज मुझे अपने प्रश्नों का उत्तर नहीं मिला तो मैं संघ का त्याग कर

दूंगा। यदि आप जानते हैं कि विश्व नित्य है तो आप कहते क्यों नहीं कि विश्व नित्य है। यदि आप न जानते हों तो कह दीजिए कि मुझे इसका ज्ञान नहीं है।"

बुद्ध ने कहा, "मालुंक्यपुत्र, क्या मैंने तुम्हें बुलाया था और कहा था कि मालुंक्यपुत्र, तुम मेरे पास आओ, मैं तुम्हें बताऊं वैसा पवित्र जीवन व्यतीत करो और मैं तुम्हारे हर प्रश्न का उत्तर दूंगा ?" इन शब्दों से बुद्ध ने पहले तो मालुंक्यपुत्र को थोड़ा झिड़का, फिर आगे बोले, "मालुंक्य पुत्र, एक ऐसे आदमी की कल्पना करो, जिसे विषबाण लग गया है। उसके मित्र और सम्बन्धी तत्काल उसे चिकित्सक के पास ले जाते हैं, पर वह कहता है कि इसके पहले कि मैं बाण निकलवाऊं, मैं यह जानना चाहता हूं कि जिसने मुझ पर बाण चलाया है वह कौन था ? वह ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य या शूद्र था? उसका नाम और गोत्र क्या था ? वह लम्बा था या नाटा था ? उसके शरीर का वर्ण गोरा, काला या पीला था ? वह किस गाँव या शहर में रहता था ? मैं यह भी जानना चाहता हूं कि बाण को चलाने के लिए किस प्रकार का धनुष व्यवहार में लाया गया था। धनुष की प्रत्यंचा कैसी थी ? बाण पर किस पक्षी का पर लगा था और बाण किस विष में डुबोया गया था ?

"मालुंक्यपुत्र, इन प्रश्नों का उत्तर जुटाकर उसे बताया जाय, इसके पहले तो वह आदमी ही मर जायेगा। यही दशा उस व्यक्ति की है, जो यह जानना चाहता है कि विश्व नित्य और असीम है या नहीं ? इस प्रश्न का उत्तर पाये बिना वह पवित्र जीवन की राह ग्रहण ही नहीं करेगा।

"मैं तुम्हें बताता हूं कि निर्वाण-प्राप्ति के लिए इन प्रश्नों का कोई महत्व नहीं है। इन प्रश्नों का उत्तर कुछ भी हो, जन्म,

जरा, ह्रास, मृत्यु और इनसे पैदा होने वाले कष्ट, दुःख और शोक पर उसका कोई असर नहीं पड़ता और न मेरे इस कथन पर कि इनसे मुक्ति पाना इस जीवन में ही संभव है।

"अतः मालुंक्यपुत्र, जो मैंने स्पष्ट कर दिया है, उसे स्वीकार करो और जिसकी व्याख्या मैंने नहीं की है, उसके सम्बन्ध में विचार मत करो। जानते हो, जिन प्रश्नों को तुमने उठाया है, उनका उत्तर देने की मैंने क्यों कोशिश नहीं की? क्योंकि उनके उत्तर से अध्यात्ममय जीवन न प्रमाणित होता है, न उनका एक दूसरे से कोई सम्बन्ध है। ये तुम्हें असंपृक्तता, शांति, गहरी अनुभूति और अंत में निर्वाण प्राप्त करने में तुम्हारी कोई सहायता नहीं कर सकते। मैंने क्या बताया है? यही तो दुःख है और मैंने तुम्हें वह विधि बताई है, जिसके द्वारा इस अवस्था का अन्त किया जा सकता है। मैंने तुम्हें यह सब इस लिए बताया है क्योंकि आध्यात्मिक जीवन के यही सब सारभूत सिद्धान्त हैं।"

यही बातें उन्होंने, जब वे एक वृक्ष के नीचे बैठे कुछ भिक्षुओं से बात कर रहे थे, कही थीं। बुद्ध ने सामने की कुछ पत्तियां उठा लीं और पूछा, "भिक्षुओ, मेरे हाथ में ज्यादा पत्तियां हैं या वृक्ष पर?"

भिक्षुओं ने उत्तर दिया, "वृक्ष पर बहुत अधिक पत्तियां हैं।"

बुद्ध ने भिक्षुओं को अपनी बात समझाते हुए कहा, "इसी प्रकार जिन सत्यों का मैंने स्पष्टतया अनुभव कर तुम्हें बताया है, वे मेरे हाथ की पत्तियां हैं और जो नहीं बताया है वे हैं, वृक्ष पर की पत्तियां। जो नहीं बताया है, पवित्र जीवन के लिए उसके जानने की कोई आवश्यकता नहीं है, न वह किसी तरह भी

आध्यात्मिक जीवन में सहायक है। मैंने तुम्हें दुःख की प्रकृति और उससे मुक्ति का उपाय बताया है। और यही ज्ञान निर्वाण को प्राप्त कराता है।"

बुद्ध हठवादिता के विरोधी थे। दार्शनिक विषयों पर विचार करना वे व्यर्थ समझते थे और ईश्वर-सम्बन्धी लोगों के निश्चित विचारों पर बात करना बिल्कुल गलत मानते थे। एक बार श्रावस्ती में बहुत से विद्वान, संन्यासी, दार्शनिक प्रश्नों पर बहस करने लगे। वहां बुद्ध उपस्थित थे। बहस के अन्त में वे उन प्रश्नों पर आ गए, जो मालुंक्यपुत्र को परेशान किये रहते थे। यही कि क्या विश्व नित्य है? क्या वह अनन्त है? क्या शरीर और आत्मा दो भिन्न वस्तु हैं? क्या इस संसार में पूर्णता की प्राप्ति हो सकती है? बहस इतनी बढ़ी और इतनी गर्म हो गयी कि ज्ञानान्वेषण से उतरकर व्यक्तिगत आक्षेप के धरातल पर आ गई। लोग एक-दूसरे को गालियां देने लगे। लोगों ने बुद्ध से बीच-बचाव करने को कहा। बुद्ध ने सभी को शांत किया और यह कहानी सुनाई:

एक बार एक राजा ने बहुत से जन्मांधों को बुलाया और उनके बीच एक हाथी लाकर खड़ा कर दिया। फिर राजा ने अंधों से कहा कि वे आगे बढ़ें और हाथी को टटोलकर बतायें कि हाथी कैसा है? किसी के हाथ हाथी का सिर आया, किसी के कान, किसी के दांत, तो किसी की पकड़ में सूंड़ आ गई, किसी के पैर या पूंछ। किसी ने हाथी की पूंछ के छोर के बाल पकड़े। फिर राजा ने हर अंधे से पूछा कि हाथी की शक्ल कैसी है? जिसने हाथी का सिर छुआ था, उसने कहा कि हाथी हंडे की तरह होता है। जिसने कान छुआ था उसने बताया कि हाथी सूप की तरह होता है। दांत पकड़ने वाले ने हाथी को

हल की फाल की तरह का बताया और सूंड़ पकड़ने वाले ने हल की मूठ। पैर को खंभा, पूंछ को मूसल और जिसने हाथी की पूंछ का अन्तिम सिरा पकड़ा, उसने हाथी को झाड़ू बताया।

उत्तर सुनकर राजा हंसने लगा और अंधे एक-दूसरे को झूठा कहकर झगड़ने लगे। झगड़ते-झगड़ते वे गुत्थम-गुत्था करने लगे।

बुद्ध ने कहा कि ये बहस करने वाले सभी हाथी का स्वरूप निश्चित करने वाले अंधों की तरह हैं। इन्होंने यथार्थ का केवल एक पक्ष देखा है और बात इस तरह की कर रहे हैं, जैसे पूर्ण यथार्थ को इन्होंने जान लिया है।

हाथी की तुलना का बुद्ध ने एक जगह और उपयोग किया है और उसके द्वारा सत्य की खोज में लगे व्यक्ति के लिए धैर्य और विनम्रता का उपदेश दिया है। एक साधारण किस्म का आदमी जंगल में जाता है और वहां हाथी के पद-चिह्न देखता है। वह सोचता है कि ये चिह्न राजा के सबसे बड़े हाथी के पांवों के हैं। पर दूसरा खोजी ज्यादा बुद्धिमान है। वह सोचता है ये नाटी, मोटी, हथिनी के भी हो सकते हैं। वह अपने विचारों की पुष्टि के लिए अन्य संकेत भी ढूंढ़ता है। वह देखता है कि जिस रास्ते हाथी गया है, उस रास्ते के वृक्षों की एक ऊंचाई पर की डालें टूटी हुई हैं। तब भी वह यह नहीं कहता कि राजा का ही हाथी इस रास्ते से गया है। वह फिर अन्य प्रमाण भी ढूंढ़ता है और निश्चित हो जाने पर ही वह इन पद-चिह्नों को राजा के हाथी के पैर के चिह्न कहता है।

बुद्ध ने कहा कि इस तरह आध्यात्मिक उन्नति भी धीरे-धीरे होती है। कभी किसी को यह नहीं सोचना चाहिए कि

उसने पूर्णता प्राप्त कर ली है, क्योंकि बढ़ने की गुंजायश हमेशा रहती है।

बौद्ध धर्म उनके लिए नहीं है, जो यह चाहते हैं कि कोई गुरु या धर्मग्रंथ उन्हें सदा बताता रहे कि वे जीवन को नियमित करें। बुद्ध के सारे उपदेशों में यही झलकता है कि हर आदमी को संतुलित रह कर स्वयं सोचना चाहिए और सदाचार-संबंधी निर्णय स्वयं लेना चाहिए। पर हर आदमी को सोचने की एक परिधि तो चाहिए ही। इसके लिए बुद्ध ने आर्य आष्टांगिक मार्ग की व्याख्या की है। उनके कर्म के सिद्धांतों का निचोड़ यही है कि हर आदमी को निर्वाण की प्राप्ति स्वयं करनी है।

एक बार बुद्ध केशपुत्र गए। वहां धार्मिक गुरु और संन्यासी हमेशा आते रहते थे। जो भी आता, दूसरे के सिद्धान्तों की धज्जियां उड़ा देता और अपना नया सिद्धान्त स्थापित करता। यह देख कर केशपुत्र के लोग बहुत परेशान थे। बुद्ध जब वहां पहुंचे तो लोग उनसे पूछने आये कि हम यह कैसे जानें कि कौन-सा गुरु सत्य कह रहा है?

बुद्ध ने कहा, "आप लोगों का अनिश्चित और शंकाशील होना स्वाभाविक है। आप किसी सिद्धान्त के सही होने का प्रमाण सुने हुए को, धर्मग्रन्थ को, गुरु की बुद्धिमत्ता या महत्ता को न दें। आप स्वयं अपने से पूछें कि क्या सही है और क्या गलत? किसे करने पर बुद्धिमान लोग गलत कहेंगे और क्या करने पर अनिष्ट और अशुभ होगा।"

इसे भी कुछ लोग उत्तर से बचना ही कहेंगे, कलाम की तरह निर्णय के लिए किसी निश्चित मापदण्ड के आधार की मांग करेंगे। उत्तर, बुद्ध ने कलाम को दिया था और उत्तर

दिए ढाई हजार वर्ष हो गए, पर इतने दिनों बाद भी सांप्रदायिकता और मनुष्य की असहिष्णुता में कमी नहीं आयी है। ऐसे प्रश्नों के उत्तर में बुद्ध कहेंगे, "पहले अपने अन्दर तो देखो जो आकांक्षा, क्रोध और भ्रम से भरा हुआ है। ऐसे में सही उत्तर कहां से प्राप्त होगा?" यही बुद्ध ने कलाम को भी समझाया और उसे सन्तोष मिला।

व्यक्ति-पूजा में लोग न लग जायें, इसके प्रति बुद्ध हमेशा सजग रहे। वे हमेशा समझाते रहे कि जो कुछ भी महत्व है, उन के उपदेशों का है, व्यक्ति के रूप में उनका कोई महत्व नहीं है।

अपनी यात्रा के आरम्भिक दिनों में एक रात वे एक कुम्हार के बाड़े में ठहरे। वहीं एक युवक संन्यासी भी ठहरा हुआ था। उससे वे बातें करने लगे। उस समय का संन्यासी किसी-न-किसी गुरु से सम्बन्धित होता था, अतः उन्होंने पूछा, "तुम्हारे गुरु का नाम क्या है?"

युवक का नाम पुक्कुसाति था। उसने उत्तर दिया, "शाक्य वंश के गौतम ने अपना घरबार छोड़कर संन्यास ग्रहण किया है। उनकी बहुत प्रशंसा सुनी है। लोग कहते हैं कि उन्हें 'संबोधि' की प्राप्ति हो गई है। मैं उन्हें अपना पथ-प्रदर्शक मानता हूं। उनके उपदेशों का अनुसरण करना चाहता हूं। उन्हीं से प्रव्रज्या लेने का मेरा इरादा है।"

बुद्ध ने पूछा, "क्या तुमने कभी अपने गुरु को देखा है? क्या देखो तो उन्हें पहचान लोगे?"

पुक्कुसाति बोले, "न मैंने कभी उन्हें देखा है, न मैं उनके सामने होने पर पहचान ही सकूंगा।"

बुद्ध ने पुक्कुसाति को नहीं बताया कि वे कौन हैं और उसे

बुद्ध के उपदेश सुनाने की इच्छा प्रकट की। पुक्कुसाति उपदेश सुनने को तैयार हो गया और बुद्ध ने उपदेश सुनाए। उन्हें सुन कर पुक्कुसाति को निश्चय हो गया कि बुद्ध के उपदेश कोई अन्य नहीं, स्वयं बुद्ध ही सुना रहे हैं। उसने उन्हें न पहचान पाने के लिए क्षमा माँगी और प्रव्रज्जित किये जाने की प्रार्थना की।

भिक्षु बनने के लिए चीवर और भिक्षापात्र की आवश्यकता थी। पुक्कुसाति उन्हें लाने गया तो रास्ते में एक सांड़ ने उस पर हमला किया और वह मारा गया। बुद्ध ने जब पुक्कुसाति की मृत्यु का समाचार सुना तो उन्होंने उस को बुद्धिमान कहकर प्रशंसा की। उन्होंने कहा कि पुक्कुसाति सत्य को समझ गया था, वह गुरु से नहीं, सिद्धान्तों से सम्बन्धित था।

श्रावस्ती का एक युवक बक्कलि बुद्ध पर मुग्ध हो गया। जब भी उन्हें वह आते जाते देखता, देखकर अभिभूत हो उठता। उसने सोचा, घर में रहने पर तो मैं जितनी बार चाहूं बुद्ध को देख नहीं सकूंगा, क्यों न मैं भिक्षु बनकर संघ में शामिल हो जाऊं कि मेरी इच्छा पूरी होती रहे। अतः उसने संघ में जाकर दीक्षा ले ली। संघ में वह हमेशा बुद्ध के पीछे लगा रहता। उन्हें एक टक देखता रहता और सराहा करता। बुद्ध बक्कलि के मोह से परिचित थे। पर वे उसकी उम्र थोड़ी बढ़ने की प्रतीक्षा करते रहे। जब वह बड़ा हुआ तो उन्होंने उससे कहा, "मेरा शरीर तो नाशवान और अनित्य है। यदि तुम्हें मुझको सचमुच देखना है तो मेरे उपदेशों को देखो।" पर उनके कथन का बक्कलि पर कोई असर नहीं हुआ, तो बुद्ध ने कड़ाई से काम लेने का विचार किया। इसी समय उन्हें राज-गृह तीन महीने रहने का बुलावा मिला। बक्कलि भी उनके

साथ चलने को उद्यत हुआ, इस पर बुद्ध ने कहा, "वक्कलि, तुम मेरे साथ नहीं चल सकते। यह यात्रा मुझे अकेले करनी है।"

वक्कलि बहुत निराश हुआ और अपनी कोठरी में जाकर सोचने लगा कि बुद्ध के दर्शन के बिना वह तीन मास कैसे काटेगा? उसे यह असम्भव लगा तो निराशा की अवस्था में वह एक पहाड़ पर चढ़ गया और पहाड़ के नीचे कूदकर आत्म-हत्या की सोचने लगा। उस समय बुद्ध वहाँ प्रकट हुए और उन्होंने उसे समझाया कि उनके उपदेश ही उसे प्रकाश दे सकते हैं। तब वक्कलि अपनी गलती समझ गया।

बुद्ध के उपदेशों के पीछे शास्त्र जैसी कोई चीज नहीं है। उनके उपदेश मनुष्य की प्रकृति पर आधारित हैं। भिक्षु भी प्रकृत्या मनुष्य ही हैं, अतः उनमें भी संघ के कार्यों को लेकर ईर्ष्या, द्वेष चलते रहते थे। वे आपस में झगड़ते रहते थे और इन झगड़ों को मिटाना बुद्ध को ही पड़ता रहा होगा। एक बार तो भिक्षुओं के मध्य हुए झगड़े को देखकर वे ऊब गए थे। कोशांबी के संघ में स्वच्छता के एक छोटे से बिंदु को लेकर दो अग्रणी भिक्षुओं में विवाद चल पड़ा। उनमें से प्रत्येक के अनु-यायी भिक्षुओं में भी विवाद चल पड़ा और वे आपस में झगड़ने लगे। विवाद और झगड़ा दोनों पक्ष की भिक्षुणियों और उपासकों में भी फैल गया। दोनों नेताओं की आपसी बातचीत बन्द हो गई। यह सुनकर बुद्ध ने कोशांबी के भिक्षुओं को कहलवाया कि आपसी झगड़ा समाप्त कर दें, पर उन पर उनकी आज्ञा का कोई असर नहीं हुआ तो वे स्वयं कौशांबी गए। इस पर भी वे शान्त नहीं हुए तो बुद्ध निराश होकर अकेले निकल गए और परिलय नामक जंगल में जाकर वर्षावास करने लगे। जंगल में उन्हें एक हाथी मिला, जो उनकी सेवा करने लगा।

बुद्ध के संघ को त्यागने की बात सुनकर बुद्ध के उपासकों ने संघ को सहायता देनी बन्द कर दी और कहला दिया कि जब-तक वह बुद्ध से क्षमा प्राप्त नहीं कर लेंगे, उन्हें कोई सहायता नहीं दी जायगी । भिक्षु इसके लिए तैयार हो गए, पर क्योंकि वर्षा के दिन थे, बुद्ध को खोजना सम्भव नहीं था, अतः वर्षा ऋतु के बचे हुए सप्ताह उपासकों ने सहायता के अभाव में कष्ट से गुजारे ।

जंगल में हाथी जंगली जानवरों से बुद्ध की रक्षा तो करता ही था, वह बुद्ध का चीवर और भिक्षा-पात्र अपने सिर पर रख कर उनके साथ भिक्षाटन में भी जाता था । जंगल में एक बंदर भी बुद्ध की सेवा में लग गया । उसने बुद्ध को जंगली शहद खाने को दिया । प्रकृति की गोद में बिताया बुद्ध का यह समय उनके लिए बड़ा आनन्दमय रहा ।

बुद्ध के जंगल में हाथी के साथ रहने की बात श्रावस्ती के लोगों को ज्ञात हो गई । वे अनाथपिंडक के साथ आनन्द के पास गए और उनसे प्रार्थना की कि वे बुद्ध को मनाकर लावें और झगड़ा मिटा दें । उनकी बात मानकर बहुत-से भिक्षुओं को लेकर आनन्द जंगल में बुद्ध की सेवा में पहुंचे । बुद्ध ने उन्हें आया देख इन शब्दों में सम्बोधित किया, "यदि साथी बुद्धिमान हों, वे शांत जीवन व्यतीत करते हों, तो उनके साथ सहयोग-पूर्वक रहना और उनसे बात करना अच्छा लगता है, अन्यथा जिसने राज त्याग दिया है, ऐसे राजा की तरह या जंगल में हाथी की तरह अकेले रहना श्रेयस्कर है । मूर्ख के साथ रहना व्यर्थ है ।"

बुद्ध सबके साथ श्रावस्ती लौट आये । हाथी से बिदा होने का दृश्य बड़ा ही हृदय-विदारक था । हाथी उन्हें जाता देख

दुःखी मन से रोता रहा। बुद्ध के जेतवन पहुंचने पर कोशांबी के भिक्षु उनसे क्षमा-याचना के लिए आए। भिक्षुओं से कौशल के राजा और अनाथपिंडक बहुत नाराज थे। उन्हें समझाते हुए बुद्ध ने कहा, "ये सभी लोग भले हैं। इन्होंने आपसी झगड़े के कारण मेरी बात नहीं सुनी।" आये भिक्षुओं के मन में अपने व्यवहार पर बड़ा क्षोभ था और वे शांत थे। उन्होंने बुद्ध के चरणों पर गिरकर क्षमा मांगी। बुद्ध ने उन्हें क्षमा किया और कहा, "कुछ लोगों को ज्ञात नहीं है कि झगड़े स्वयं समाप्त हो जाते हैं, यदि यह जान लो तो तुम्हारे मन में घृणा को स्थान नहीं मिलेगा।"

एक बार बुद्ध युद्ध रुकने के कारण बने। रोहिणी नदी के दाएं और बाएं शाक्य और कोलिय नाम के दो राजवंशीय लोग रहते थे। रोहिणी नदी इनकी सीमा थी। दोनों ने मिलकर नदी पर बांध बांध रखा था और नदी के पानी से दोनों ओर के लोग अपने खेत सींचते थे। एक बार गरमी में नदी में पानी बहुत कम हो गया और खेत सूखने लगे। कोलियों ने नदी का सारा पानी अपने खेतों में ले जाने की योजना बनाई, जिसे शाक्यों ने नापसन्द किया और वे क्रोधित हो गए। इस पर शाक्यों और कोलियों में झगड़ा हो गया और कुछ मारपीट भी हो गई। इस पर निपटारे के लिए दोनों ओर की सेनाएं भी आ गयीं।

परिस्थिति समझकर बुद्ध उनका झगड़ा निपटाने आये। वे दोनों से सम्बन्धित थे, अतः उनकी परिस्थिति नाजुक थी। अक्सर युद्ध में होता यह है कि लोग युद्ध के कारण को ही भूल जाते हैं और युद्ध सामने रह जाता है। बुद्ध युद्ध-स्थल पर पहुंचे तो उन्होंने लोगों से युद्ध का कारण पूछा। कोई स्पष्ट

उत्तर न दे सका। तव उन्होंने एक साधारण मजदूर से अपना प्रश्न किया तो उसने उत्तर दिया, "जल।" तव बुद्ध राजा के पास आये और पूछा, "राजन्, जल का क्या मूल्य है?"

राजा ने उत्तर दिया, "वहुत थोड़ा।"

बुद्ध ने फिर पूछा, "और आपके सैनिकों का मूल्य क्या है?"

राजा वोले, "वे अमूल्य हैं।"

तब बुद्ध ने उनसे पूछा, "क्या जल के लिए, जिसका मूल्य बहुत थोड़ा है, अपने आदमियों की अमूल्य जान गंवा देना उचित है?" फिर बुद्ध ने दोनों राजाओं और उनके पक्ष के लोगों को यों सम्वोधित किया, "आप लोग इस प्रकार उत्तेजित क्यों हैं? यदि आज मैं यहां न होता तो खून की नदियाँ बह गई होतीं। आपने शत्रुता और घृणा को अपने मन में स्थान दे रक्खा है। मैं घृणा से मुक्त हूं। आप लोग उग्र क्रोध से पीड़ित हैं, मैं इस व्याधि से मुक्त हूं। आप इन्द्रिय जनित सुखों के पीछे भटक रहे हैं, मैं ऐसी भटकन से दूर हूं। यदि आप लोग सुख से रहना चाहते हैं तो हमें उनके साथ, जो हमसे घृणा करते हैं, विना घृणा के रहना चाहिए। चिंता से प्रपीड़ित व्यक्तियों के वीच हमें चिंता-मुक्त रहना चाहिए।"

एक बार फिर बुद्ध कपिलवस्तु आकर वर्षावास के लिए ठहरे। उस समय उनके पिता की मृत्यु हो गई थी। जब वे कपिलवस्तु के निकट निग्राध बन में ठहरे हुए थे, राजा शुद्धो-धन की पत्नी, उनकी मौसी, जिन्होंने उन्हें पाला था विधवा रानी प्रजापति गौतमी उनके पास आयीं और प्रव्रज्जित किये जाने की प्रार्थना की। बुद्ध ने उनकी प्रार्थना अस्वीकार कर दी। दूसरी और तीसरी बार भी जब उन्होंने अपनी प्रार्थना दुहराई, तब

भी बुद्ध का उत्तर नकारात्मक ही रहा। प्रजापति दुःखित मन से वापस चली गयीं और बुद्ध वैशाली चले गए। वहां जंगल में संघ के भिक्षुओं का विहार था।

प्रजापति दृढ़ निश्चय की थीं। वे वहां भी अपनी दासियों और कुटुम्ब की स्त्रियों के साथ अपनी प्रार्थना लेकर बुद्ध की शरण में गईं। इस समय उन्होंने सिर मुड़ा लिया था और संघ के अनुरूप पीले वस्त्र धारण कर लिये थे। संघ के द्वार पर ही वे खड़ी थीं। धूल से भरी थीं। पैदल चलकर आने के कारण उनके पैर मैले और सूजे हुए थे और वे रो रहीं थीं। इस दशा में आनन्द ने उन्हें देखा तो आश्चर्यचकित हुए और उनसे पूछा, "गौतमी यहाँ तुम क्या कर रही हो ?"

गौतमी ने उत्तर दिया, "मैं यहां इसलिए खड़ी हूं, क्योंकि बुद्ध स्त्रियों को दीक्षा नहीं देना चाहते।"

आनन्द को गौतमी पर दया आयी और वे तुरन्त बुद्ध के पास गए और उनसे स्त्रियों को दीक्षित किए जाने की प्रार्थना की। बुद्ध ने उनकी बात नहीं मानी तो आनन्द ने बुद्ध की तर्क-प्रणाली का व्यवहार किया और पूछा, "यदि स्त्रियों को दीक्षित किया जाय तो क्या वे संबोधि प्राप्ति कर सकती हैं ?"

नहीं कर सकतीं, यह कहना तो स्त्रियों को आध्यात्मिक रूप से निम्न ठहराना होता, अतः बुद्ध ने जवाब दिया, "वे निश्चित रूप से संबोधि प्राप्त कर सकती हैं।"

आनन्द बोले, "तब तो स्त्रियों को दीक्षा देनी ही चाहिए और प्रजापति गौतमी को तो जरूर ही देनी चाहिए। उन्होंने आपका लालन-पालन किया है।"

अब बुद्ध इनकार नहीं कर सके। उन्होंने भिक्षुणियों के जीवन के अनेक कठोर नियम बनाये और प्रजापति पहली भिक्षुणी बनीं। फिर सिद्धार्थ की पत्नी यशोधरा और उनके परिवार की अनेक स्त्रियों ने दीक्षा ग्रहण की।

जब कोई भी संघ एक ऊंचाई तक पहुंच जाता है, तब वह षड़यन्त्र और राजनीति से ग्रस्त होने लगता है। यहाँ देवदत्त ने राजनीति खेली, जिसका आहत पक्षी को लेकर गौतम से बचपन में झगड़ा हो चुका था। देवदत्त भी अनेक शाक्यों के साथ भिक्षु बन गया था और संघ में शामिल हो गया था। एक बार जब बुद्ध संघ के साथ कोशांबी पहुंच रहे थे, तो उसने कहा कि संघ का शासन मुझे सौंपा जाना चाहिए। बुद्ध ने उसकी बात नहीं मानी और उसे संघ से निकाल दिया और यह घोषणा कर दी कि देवदत्त के कार्य-कलाप के लिए संघ जिम्मेदार नहीं है। तब देवदत्त अजातशत्रु से जा मिला। अजातशत्रु अपने पिता बिंबसार से परेशान था और देवदत्त बुद्ध से। दोनों ने योजना बनाई कि दोनों अपने-अपने शत्रुओं को मौत के घाट उतार दें। अजातशत्रु ने तो सफलतापूर्वक बिंबसार की हत्या कर दी और देवदत्त ने भी बुद्ध को मारने के कई प्रयत्न किये। पहले उसने कुछ किराए के लोगों को बुद्ध की हत्या करने के लिए भेजा। वे बुद्ध को देखते ही ऐसे संमोहित हुए कि उन्हें मारना ही भूल गए और भिक्षु बन गए। फिर देवदत्त ने, जब बुद्ध रास्ते से जा रहे थे, उनकी तरफ ऊपर पहाड़ से एक चट्टान लुढ़का दी, जिससे बुद्ध को केवल थोड़ी-सी चोट लगकर रह गई। निराश होकर उसने बुद्ध पर एक हाथी छोड़ दिया, पर हाथी भी बुद्ध को देखकर शांत हो गया और उन पर हमला करना भूल गया।

अब देवदत्त ने बुद्ध के पाँच सौ शिष्यों को बहकाकर अपना संघ बना लिया, पर शीघ्र ही इन भिक्षुओं ने भी देवदत्त का साथ छोड़ दिया और बुद्ध की शरण में वापस आ गए।

देवदत्त का अन्तिम समय कठिन रोगों से ग्रस्त बीता। इस समय उन्हें पश्चात्ताप हुआ और वे बीमारी की हालत में ही बुद्ध से क्षमा माँगने गए। बुद्ध ने उन्हें क्षमा ही नहीं दी, यह भविष्यवाणी भी की कि उन्हें निर्वाण अवश्य ही प्राप्त होगा।

संघ के कई अन्य नेता भी बुद्ध से नाराज थे। अछूतों को बुद्ध अपना रहे थे, इससे तो वे नाराज थे ही, उनके अनुगामियों की संख्या बढ़ रही थी, इससे भी वे असंतुष्ट थे। पहले तो उन्होंने जनता को ही बुद्ध के विरुद्ध करना चाहा, पर जब उनकी लोगों ने नहीं सुनी तो उन्होंने बुद्ध को बदनाम करने के लिए एक चाल चली। उन्होंने चिंचा नाम की एक सुन्दर युवती को अपने षड़यन्त्र में फंसाया। शाम को जब लोग बुद्ध के प्रवचन सुनने जेतवन जाते थे तो, वह उनके साथ हो लेती और रात को भी संघ के निकट एक घर में सो जाती और प्रातः फिर जब लोग जेतवन जाते होते तो वह लौटती। इस प्रकार प्रातः लौटता देख कई लोग उससे पूछते कि रात कहां रही? वह केवल मुस्करा देती। कुछ दिनों बाद वह उत्तर में कहने लगी कि बुद्ध के साथ। इस प्रकार नौ मास बीतने पर एक दिन अपने पेट पर लकड़ी का पाटा बांधकर (जब बुद्ध अपने प्रवचन कर रहे थे) वह बीच में खड़ी हो गई और जोर-जोर से बोलने लगी, "बुद्ध, तुम्हारे प्रवचन तो बड़े सुन्दर हैं, पर यह पाप का बोझ जो तुमने मेरे पेट पर बांध दिया है, उसका क्या करूं? क्या तुम केवल आनन्द लेना ही जानते हो? मेरे पेट में आये अपने बच्चे की कोई व्यवस्था नहीं करोगे?"

बुद्ध ने अपना प्रवचन बीच में ही रोक दिया और सिर्फ इतना कहा, "बहन, तुम जो कह रही हो, वह सच है या झूठ, यह मेरे और तुम्हारे सिवा कोई नहीं जानता।" इसी समय जोर की हवा चली और चिंचा के पेट पर का कपड़ा उड़ गया और पेट पर बंधा पाटा उसके पैरों पर ऐसा गिरा कि उसके पैर की अंगुलियां कट गयीं।

देखने वालों ने चिंचा को बहुत बुरा-भला कहा और वहां से निकाल दिया।

षड़यन्त्रकारी कहां तो बुद्ध के यश को मटियामेट करने निकले थे और कहां उनकी ही पोल खुल गई।

पर विरोधी द्वेष से इतने पीड़ित थे कि उनका एक षड़यन्त्र विफल होने पर भी वे निराश नहीं हुए। वे जानते थे कि बुद्ध को बदनाम करने का स्त्री-सम्बन्ध के अलावा अन्य कोई सशक्त उपाय नहीं है। इस वार उन्होंने सुन्दरी नाम की एक युवती को किराए पर लिया। वह भी बुद्ध के प्रवचन सुनने जाने लगी और लोगों की नजरों में आ गयी। इस बार विरोधियों ने उस युवती की हत्या करवा कर संघ के निकट ही उसकी लाश फिंकवा दी। उसे गायब बताकर उसके खोजे जाने की प्रार्थना राजा से विरोधियों ने की। प्रार्थना साधारण थी। राजा ने सुन्दरी के खोजे जाने की आज्ञा दे दी। सुन्दरी की लाश विहार के पास मिली तो बुद्ध के विरोधियों ने फैलाया कि यह स्त्री बुद्ध से सम्बन्धित थी, इसके गर्भवती हो जाने पर बुद्ध ने इसको मरवा दिया। स्थिति थोड़ी गंभीर हो गई, पर हुआ यह कि शराबखाने में संहारक, जो तीन थे, शराब पीकर आपस में लड़ने लगे। इस दुष्कर्म से प्राप्त धन के बंटवारे पर वे झगड़

रहे थे। एक कह रहा था कि मैंने मारा है, मेरा हिस्सा ज्यादा है। दो कह रहे थे, ठीक है, हमने उसको केवल पकड़ा है, पर हिस्सा बराबर होना चाहिए। उनकी ये बातें लोगों ने सुनीं और उन्हें राजा के सामने पेश किया। वहां उन्होंने हत्या करना स्वीकार किया और षड़यन्त्र का सारा भेद खोल दिया। फिर राजा की आज्ञानुसार षड़यन्त्रकारियों को यह कहते हुए सारे शहर में घूमना पड़ा कि उन्होंने बुद्ध को बदनाम करने के लिए सुन्दरी की हत्या करवाई थी। इसके बाद उन्हें राजा ने दण्डित किया।

७ / निर्वाण

अपने विचारों का प्रचार पैंतालीस वर्ष तक कर चुकने के बाद जब बुद्ध वर्षावास के लिए बेलुआ ग्राम की ओर जा रहे थे, उन्हें लगा कि अब अधिक दिनों तक प्रचार-कार्य चलाते रहना उनके लिए संभव नहीं होगा। इस ग्राम में पहुंचने पर वे बीमार पड़ गए, जिसके कारण उन्हें भयंकर पीड़ा होने लगी। अपनी पीड़ा की बात उन्होंने किसी को नहीं बताई, पर वे सोचने लगे कि चुप-चाप शरीर छोड़कर निर्वाण प्राप्त कर लेना उचित नहीं होगा। शरीर छोड़ने के पहले मुझे अपने परिचारकों को इसकी सूचना देनी चाहिए और संघ से विदा लेनी चाहिए। अतः इच्छाशक्ति से रोगों को दबाये रहे और चलते रहे।

बेलुआ ग्राम पहुंचने पर बुद्ध ने आनन्द को बुलाकर कहा, "अब संघ को मेरी क्या आवश्यकता है? जो सिद्धांत मैंने सिखाये, वे स्पष्ट हैं। जो अर्थ मैंने उनका बताया उसके अलावा उनका कोई छिपा हुआ अर्थ नहीं है और मैंने कुछ भी या कोई भी विचार छिपाकर नहीं रक्खे हैं। सब कुछ तुम लोगों को बता दिया है। आनन्द, मैं बूढ़ा हो गया हूं। मेरी उम्र अस्सी वर्ष से अधिक हो गई है। अपना स्थान स्वयं बनाओ, अपने-अपने द्वीप में रहो और वह द्वीप कोई अन्य नहीं, वे सिद्धांत हैं, जो मैंने तुम्हें सिखाए हैं।"

वर्षावास समाप्त होने पर संघ ने प्रस्थान किया और चल कर वे चुन्द के आम्रवन में पहुंचे। चुन्द ने यह सुखद समाचार सुना तो वह बुद्ध के दर्शन करने गया। उनके उपदेश सुनने के

पश्चात् उसने दूसरे दिन के भोजन के लिए संघ को आमन्त्रित किया और समय पर बुद्ध अपने अनुयायियों के साथ चुन्द के घर गए। चुन्द ने उन सबको सुस्वादु भोजन कराया। भोजन में कुकुरमुत्ते की सब्जी थी। भोजन करने के वाद संभवतः कुकुरमुत्ते के कारण बुद्ध की बीमारी बढ़ गई और ऐसी बढ़ी कि फिर कम होने में नहीं आई। बीमारी भी वुद्ध की यात्रा नहीं रोक सकी। वे चलते ही गए और कुशीनारा नामक स्थान पर पहुंचे। वहां वे हिरण्यवती नदी के तट पर शाल वन में ठहरे। आनंद ने दो साल वृक्षों के बीच उनकी शैया लगा दी। बुद्ध उस पर लेट गये। वहां एक बार बुद्ध ने फिर अपनी अंतिम बात दुहराई कि जो कुछ भी महत्व है, उनके उपदेशों का है, उनका नहीं। उन्होंने कहा, "आनन्द, मेरे जाने के वाद सम्भवतः कुछ के मन में यह विचार उठे कि अव हमारा कोई पथ-प्रदर्शक नहीं रहा, अव कौन उपदेश देगा। पर आनन्द यह दृष्टिकोण सही नहीं है। जो सिद्धांत मैंने वताये और स्पष्ट किए हैं, मेरे जाने के वाद उन्हें ही अपना गुरु समझना।"

बुद्ध ने संघ को भी इन शब्दों में सम्बोधित किया, "कोई भी चीज, जिस रूप में मिली है, वह एक दिन विघटित होती ही है। पूर्णता की ओर बढ़ो।"

इतना कहने के बाद बुद्ध ध्यानमग्न हो गए और उनका शरीरांत हो गया। उनकी दाह-क्रिया राजकीय विधि से की गयी।

अनित्यता का ज्ञान होने के बावजूद अनेक भिक्षु बुद्ध के दिवंगत होने पर रोने लगे। पर सुभद्र को बुद्ध के शरीरावसान पर प्रसन्नता हुई। सुभद्र ने अपने बुढ़ापे में संघ में प्रवेश लिया था। उसने सबको सुनाकर कहा, "मित्रो, बहुत रो चुके, अब यह

शोक समाप्त करो। यह मत करो, वह मत करो, यह करो, वह करो, कहने वाला चला गया। बुद्ध की आज्ञाओं से हमें मुक्ति मिल गई। अब हम जो चाहें, कर सकते हैं और जो नहीं चाहेंगे, नहीं करेंगे।"

यह सुनकर भगवान बुद्ध के एक प्रमुख शिष्य महाकश्यप ने अनुभव किया कि अब न संघ पूर्ववत् चल सकेगा, न भिक्षु नियमों का कठोरतापूर्वक पालन करेंगे। पता नहीं लोग साथ रहेंगे भी या नहीं और संघ बिखर जायेगा। उन्होंने सोचा ऐसा हो, इसके पहले ही बुद्ध के वचनों का प्रामाणिक एकत्रीकरण शीघ्रातिशीघ्र कर देना चाहिए। अपने विचारों को कार्य रूप में परिणत करने के लिए उन्होंने राजगृह में राजा अजातशत्रु के सहयोग से एक सभा करने का निश्चय किया और इसमें पांच सौ अर्हंत निमंत्रित किए गए। इस सभा का सभापतित्व काश्यप ने किया। सभा में बुद्ध के उपदेश याद करके दुहराये गए और उन्हें क्रम दिया गया। उपाली और आनन्द ने उपदेशों को सूत्रों में परिणत करने में विशेष योग दिया। काश्यप के प्रश्नों की छाया में संघ के सारे नियम और उपदेश एकत्र हो गए और उन्हें कण्ठस्थ कर लिया गया। यह शासन-सभा सात महीने तक चली।

बुद्ध के उपदेशों को कंठस्थ करने की परम्परा चलती रही और उन्हें ईसा के जन्म के आठ वर्ष पूर्व लंका में हुई चौथी शासन सभा में लिपिबद्ध किया गया।

बुद्ध की वाणी को तीन भागों में विभक्त किया गया है। जिनको त्रिपिटक अर्थात् आज्ञाओं की तीन पिटारियां कहते हैं, इन तीनों के तीन नाम हैं। पहला, विनय—संघ के आचरण-सम्बन्धी नियम। दूसरा सूत्र—बुद्ध द्वारा समय-समय पर दिये गए उपदेशों का संग्रह, तीसरा अभि-

धम्म—उपदेशों का दार्शनिक और मनोवैज्ञानिक आधार। यह कार्य शासन-सभा की तीसरी बैठक में पूर्ण हुआ था, जो ईसा के जन्म के २४६ वर्ष पूर्व हुई थी।

बुद्ध के उपदेश, विशेष रूप से सूत्र, जिस रूप में हम तक पहुंचे हैं और हमें मिले हैं, उनके रूप के सम्बन्ध में कुछ जान लेना आवश्यक है। बुद्ध के कठिन-से-कठिन उपदेश तथा उनके प्रमुख शिष्यों के उपदेश भी इस रूप में ढाले गए हैं कि उन्हें कंठस्थ करना सरल हो जाय। उन्हें लिखित रूप में न देकर कंठस्थ करना संभवतः इसलिए निश्चित किया गया, क्योंकि उस समय कागज और स्याही इस प्रकार की प्राप्त नहीं थी, जो टिकाऊ हो। उपदेशों को सूत्ररूप देने से कंठस्थ करना आसान हो गया। कंठस्थ करने की यह विधि बुद्ध के समय के अनेक भारतीय उपदेशकों ने भी अपनायी थी। चीन और ग्रीस के गुरुओं ने भी अपने उपदेश सुरक्षित करने के लिए कंठस्थ करने की विधि प्रचलित की थी।

मैंने त्रिपिटक का आधार लेकर ही यह छोटी-सी पुस्तक लिखी है।

०
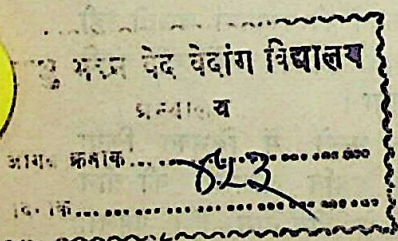
नीति, अध्यात्म, आचार
हमारा चुना साहित्य

□

१. अनासक्ति योग

२. विनय-पत्रिका

३. भगवद्गीता

४. भजगोविन्दम् स्तोत्र

५. श्रीमद्भागवत के पंचगीत

६. उपनिषदों का बोध

७. उपनिषद

८. वेदान्त

९. बुद्धवाणी

१०. रामतीर्थ संदेश

११. जीवन और शिक्षण

१२. नीति की बातें

१३. गांधी शिक्षा

१४. सच्चे इन्सान बनो

१५. तुकाराम गाथासार

१६. आत्मचिंतन

१७. बुद्ध जीवन और दर्शन

सस्ता साहित्य मण्डल प्रकाशन